

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 5 अंक 4

अप्रैल-जून 2008

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

लोकेश चन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

रमेशचन्द्र शाह

सम्पादक

बी. बी. कुमार

आस्था भारती

दिल्ली

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपये
विदेशों में	\$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20.00 रुपये
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपये
विदेशों में	\$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपये
अन्दर कवर	7,500.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपये

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती

रजिस्टर्ड कार्यालय :

27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेन्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :

12/604 ईस्ट एंड अपार्टमेन्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

से आस्था भारती के लिए डॉ. बी.बी. कुमार, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

फोन : 011-22712454

ई.मेल : asthabharati@yahoo.com, asthab@vsnl.net

वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य	5
1. लावदेश में रामायण की कथा आचार्य रघुवीर	9
2. कला शंकर पुणतांबेकर	24
3. सत्याग्रह है साहित्य का स्वराज नन्दकिशोर आचार्य	31
4. ईसाई-दलित और अछूत भी रामबहादुर राय	36
5. मुम्बई के महानगरीय और सार्वदेशिक चरित्र का क्षरण डा. कुमार विमल	51
6. आस्था को बचाने का पर्याय है, गंगा को बचाना पवन कुमार गुप्ता	58
7. सिद्ध सरहपाद कृत 'दोहा-कोश' राजमल बोरा	63
8. ऋग्वेद में वर्णित नदियाँ कृपाशंकर सिंह	86
9. वाम-इस्लाम जुगलबन्दी उपन्यास में डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद	98
10. प्राचीन भारत में ध्वज गुंजन अग्रवाल	107
11. न बाँटिए कबीर को : सवर्णवादी कठघरे से कबीर की मुक्ति कामेश्वर पंकज	115

12. हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक देवेन्द्र कुमार देवेश	118
13. पाठकीय प्रतिक्रिया	121
14. प्राप्ति-स्वीकार	126

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

ऐसा तो होना ही है!

आजादी के बाद हमने कुछ बातों को स्वयं सिद्ध मानकर विकास के रास्ते पर चलना शुरू किए। जैसे कि मौलिक समस्या अधिकारों की रक्षा की है; कर्तव्य पालन की नहीं। इसी को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान तो किया गया, मौलिक कर्तव्यों की चर्चा तक गायब रही। इसका कारण इस बात में भी खोजा जा सकता है कि संविधान निर्माताओं में अधिकांश ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था में प्रशिक्षित वकील थे, जो अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्यायालयों में व्यक्ति के अधिकार की अवहेलना की लड़ाई ही लड़ा करते थे; अधिकार अवहेलना की बात उनके दिमाग में रूढ़ हो गयी थी। परम्परा, जो परिवार, गाँव, समाज तथा राष्ट्र के हितों से जुड़ना सिखाती थी, उनके अभिन्न अंग के रूप में बने रहने की शिक्षा देती थी, उसका कोई महत्व उनकी नजर में नहीं था।

दूसरी बात जिसे स्वयं-सिद्ध मानकर हम विकास के पथ पर चलने लगे वह यह भी कि सरकार को सब कुछ करना चाहिए; वह सब कुछ कर सकती है; वह सब कुछ करेगी। लोगों के लिए भोजन, घर, कपड़ा, दवा, शिक्षा, सुरक्षा आदि प्रदान करने से लेकर न्याय व्यवस्था, रेल, हवाई जहाज, कारखाने, होटल आदि चलाने, विस्फोट-पावरोटी, खाद, इस्पात सड़क, बाँध आदि बनाने तक, यानी सब कुछ। इन सब का क्रियान्वयन समाज की केन्द्रीयता के उद्देश्य से किया जाता रहा; हुआ ठीक उल्टा। समाज की केन्द्रीयता घटी; राजनीति एवं नौकरशाही केन्द्र में आ गयी। भ्रष्टाचार लगातार बढ़ता गया; धनी-गरीब के बीच की खाई बढ़ती चली गयी। समाज के कार्यों से लोगों ने यह मानकर कि वे सभी काम सरकार के हैं, अपने हाथ खींच लिए; उनकी संवेदना घटी। हमारा राजनीतिक नेतृत्व सामाजिकरण के नाम पर नौकरशाही को लगातार सब अधिकार देता गया। वह भूल गया कि सरकारी मशीन इस्पात निर्मित नहीं, बल्कि मानव निर्मित है, जो संसाधनों को सोखती है और उसकी कार्य करने की अपनी सीमाएँ भी हैं। परिणाम सामने है, आज यदि केन्द्र से विकास के लिए एक रुपया दिया जाता है तो समाज के सबसे नीचले स्तर तक गाँवों के लाभार्थियों तक मुश्किल से 10-15 पैसे ही पहुँच पाते हैं। ग्राम पंचायतों के बनने से उपजी आशा भी फलप्रद नहीं रही है; इसने गाँवों के आपसी सौहार्द को कम किया है, भ्रष्टाचार की एक नयी कड़ी के रूप में पंचायतें उभरी हैं।

यहाँ एक तीसरी बात का उल्लेख भी आवश्यक है, जिसका सम्बन्ध हमारी शिक्षा व्यवस्था से है। हम अपने बच्चों को क्या पढ़ा रहे हैं? उन्हें कैसी शिक्षा दे रहे हैं? इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए अभिभावकों के पास, नेताओं के पास, शिक्षा

से जुड़े लोगों के पास भी समय नहीं है। अपनी शिक्षा व्यवस्था का भार हमने उन अपराधी वृत्ति के लोगों पर डाल रखा है जिन्हें हमारे छोटे छोटे निरीह बच्चों पर बिल्कुल दया नहीं आती। वे उन्हें उनकी वजन से अधिक भार के किताब के बस्ते ढोने को बाध्य करते हैं; उनसे क्रूरतापूर्वक उनका बचपन ही नहीं, बल्कि उनकी भाषा, उनका सांस्कृतिक दाय तक छीन लेते हैं। वैसे दया तो उन बच्चों के माता-पिता को भी नहीं आती, जो उन्हें मात्र ढाई तीन साल की उम्र में स्कूलों में ढकेल आते हैं और जो स्नेह, जो आत्मीय प्यार उन्हें उस छोटी उम्र में अपने माता-पिता से मिलना चाहिए उसे नहीं वे पाते। कितने बच्चों की तो अपने माता-पिता से दिन-प्रति-दिन मुलाकात भी नहीं हो पाती। ऐसे में आज जिन संबंधों के तार-तार होने की बात प्रायः रोज ही की जाती है, उसका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

बच्चों को दी जानेवाली शिक्षा के विषय में भी हमारा समाज भ्रम का शिकार है। वस्तुतः आज हम बच्चों को शिक्षा नहीं, सूचना मात्र देते हैं; असम्बद्ध, बेतरतीबवार सूचना, जिसका उनके जीवन में न कोई महत्त्व होता है और न उपयोगिता। आप किसी रेलवे स्टेशन, बस अड्डा या अन्य ऐसे स्थान पर जहाँ जनता का आना-जाना, ठहरना होता है, खड़े हो जाइए, किसी खुले नल या दोपहर को जलते बल्ब पर नजर डालें और ध्यान दें कि कितने तथाकथित पढ़े-लिखे व्यक्ति उस खुले नल या जलते बल्ब को बन्द करते हैं। आप पायेंगे कि पचासक लोगों के गुजरने के बाद शायद कोई एक व्यक्ति ऐसा कर पाता है। क्यों? ऐसा क्यों होता है? क्या वे पढ़े-लिखे लोग यह नहीं जानते कि खुले नल का बहता जल, बिजली का ऐसे ही खर्च होना राष्ट्रीय संसाधनों की बर्बादी है, राष्ट्र उनका है अतः यह बर्बादी उनकी भी है? हाँ जानते हैं, किन्तु सूचना के रूप में प्राप्त इस या अन्य जानकारियों का उपयोग उनके लिए परीक्षा-भवन तक ही सीमित है। वस्तुतः हम उन्हें शिक्षित नहीं करते और लगातार दी जानेवाली बेतरतीब सूचनाएँ उनके जीवन का, उनकी सोच का अंग नहीं बनती। हम परिवार, गाँव, शहर, समाज, संस्कृति, राष्ट्र, किसी के भी प्रति बच्चों में भावना के स्तर पर लगाव नहीं पैदा करते, उन्हें जोड़ते नहीं। उसे ग्रहण करने की मानसिकता के लिए जिस सौहार्दपूर्ण परिवारिक-सामाजिक वातावरण की आवश्यकता है, वह हम उन्हें दे नहीं पाते।

शिक्षा के विषय में हमने भ्रम पाल रखा है कि हर ऐसा व्यक्ति जो विद्यालयों, महाविद्यालयों के गलियारों से गुजरा है शिक्षित है। वस्तुतः ऐसा है नहीं। शिक्षा के विषय में यह मिथक अंग्रेजों की देन है, अन्यथा डिग्रीधारी साक्षर अशिक्षित तथा समाज से पारंपरिक ज्ञान-प्राप्त निरक्षर शिक्षितों की कमी आज भी नहीं है। परम्परा हमें ज्ञान देती थी; मूल्यों से जुड़े रहकर आत्म-नियंत्रण सिखाती थी; परिवार एवं समाज का अच्छा सदस्य बनना सिखाती थी। उसे हमने नकार दिया। हम बच्चों को जो पढ़ा रहे हैं, उसमें सार्थक अन्तर्वस्तु का अभाव ही नहीं है, उसमें सामाजिक/साम्प्रदायिक/पारिवारिक सौहार्द बिगाड़ने वाली बातें भी होती हैं। जैसे यह काफी नहीं है, हमने इस देश के टी.वही चैनलों को

हिंसा तथा सेक्स परोसनेवाले, हमारे मूल्यों पर लगातार प्रहार करने वाले कार्यक्रमों/सिरियलों को चलाने की खुली छूट दे रखी है। शिक्षा/मानव संसाधन का भार हम प्रायः ही दूसरी श्रेणी के मंत्रियों को देते रहे हैं। सबसे बुरी बात तो यह हुई कि शिक्षा का भी राजनीतिकरण हम रोक नहीं पाये। परिणाम सामने है जो सुखद तो है ही नहीं।

आप किसी भी समाचार पत्र के पन्ने पलटें, उन्हें हिंसा/हत्या के समाचारों से भरा पायेंगे। पैसा, सेक्स, अच्छी जिन्दगी की ललक से प्रेरित होकर तो हत्याएँ की ही जाती है; अपनों द्वारा मूल्यों के क्षरण, रिश्तों में दरार से भी ऐसा होता है। 'सेक्युलरिज्म' के नाम पर हमने धर्म की चर्चा तक करने की मनाही कर दी। आधुनिकता की गलत समझ के चलते परंपरा हमारे लिए पिछड़ेपन का पर्याय बन गयी। मूल्य हीनता, नैतिकता के क्षरण, सामाजिक मानदंडों के लगातार कमजोर होते जाने, तथा परिवारिक रिश्तों के पवित्र बने न रहने की प्रक्रिया की हम लगातार अनदेखी करते रहे हैं। ऐसे में 'आरुषि काण्ड', किसी इन्जिनियर के पढ़े-लिखे बच्चों द्वारा अपनी माँ की हत्या, बच्चों का अपहरण, बूढ़ों तथा निकट संबंधियों की हत्या, छोटी नाबालिग बच्चियों तक का शील-हरणकई बार अपनों द्वाराऐसी घटनाएँ हैं, जो त्रस्त करती हैं, बेहद डराती हैं। लेकिन जिन परिस्थितियों की चर्चा हम ऊपर कर आये हैं, उनमें तो ऐसा होना ही है। यहाँ यदि हम यह मानकर चलते हैं कि बच्चे बिना पढ़ाए अपने कर्तव्यों, आदर्शों, सामाजिक प्रतिमानों, नैतिक मूल्यों, आदि को जान जायेंगे, फिर यथोचित व्यवहार करेंगे, तो हम गलती पर हैं। इन बातों की, अपनी परंपरा, अपने धर्म की यदि हम स्कूलों में जानकारी नहीं दे सकते, तो उसकी वैकल्पित व्यवस्था होनी चाहिए, फिर मूल्यों, आदर्शों आदि की बात का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वे निष्प्रभावी हो जाते हैं, यदि बच्चे कथनी और करनी में तालमेल हुआ नहीं देखते।

यह सत्य है कि सारे देश का पैसा सिमट कर दिल्ली, मुम्बई आदि नगरों में आ जाता है और गरीबी से त्रस्त गाँवों तथा छोटे शहरों के लोग उस पैसे का पीछा करते हुए महानगरों/नगरों/शहरों में आ जाते हैं। आवश्यक है कि इस पर लगाम लगाया जाय, विस्थापन मूल्य-क्षरण का कारक बनता है; अनावश्यक समस्याएँ पैदा करता है। आवश्यक है कि लोगों को महानगरीय भीड़-भाड़ का अंग बनने से रोकने के लिए नगरों को गाँवों तक ले जाया जाय। आज हम जिस बदलाव को होते देख रहे हैं, उसे रोकना कठिन है। आवश्यक है कि बदलाव को सही दिशा दी जाय। सरकार और समाज की सहभागिता से ऐसा करना कठिन भी नहीं है। सार्थक बदलाव की शुरुआत हमें शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव से करनी चाहिए। राजनीति से हटकर समस्याओं पर खुली चर्चा द्वारा वैचारिक धुंध को कम किया जा सकता है, जो किसी भी पहल की पहली कड़ी होगी।

ब्रज बिहारी कुमार

लावदेश में रामायण की कथा

आचार्य रघुवीर*

भारतीय इतिहास में रामायण का प्रमुख स्थान है। इसका प्रचार भारत से बाहर भी हुआ है। आज से 20 वर्ष पूर्व हमने चीनी साहित्य में से रामायण की दो कथाएँ अनुवाद की थीं। आज हम लाव (अंग्रेजी में लाओस) तथा थाइ लू की दो कथाओं का वर्णन करेंगे।

चम्पा में छठी शताब्दी में, जावा में नवीं शताब्दी में, कम्बुज राष्ट्र (अंग्रेजी में कम्बोडिया) में 11वीं शताब्दी में, थाईदेश में 13वीं शताब्दी में रामायण की कथा साहित्य अथवा शिलामूर्तियों में निरूपित है। इन देशों में रामायण का प्रचार आबालवृद्ध हुआ है।

जिन कथाओं का हम आज वर्णन दे रहे हैं उन दोनों का आविष्कार लावदेश में हुआ। एक का नाम फा लक फा लाम अर्थात् श्री लक्ष्मण श्री राम, तथा दूसरी का नाम है फोम्म-चक अर्थात् ब्रह्म-जगत जो रावण का दूसरा नाम है।

फा लक फा लाम का लावदेश में ही निर्माण हुआ ऐसा प्रतीत होता है। किसी विदेशी ग्रन्थ से अनुवाद नहीं हुआ। लावदेश की जनता में इसका अत्यधिक प्रसार है।

फोम्म-चक धार्मिक ग्रन्थ है। ये दोनों कथाएँ वाल्मीकि से बहुत दूर हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण की कथा प्रत्येक जाति और देश ने अपनी-अपनी कल्पना और भावना के अनुकूल बनाई है। केवल जावा में भारतीय ग्रन्थ भट्टिकाव्य का पूर्ण रूप से अनुसरण किया गया है। भोट (तिब्बत), मध्य एशिया, चीन, मलाया, आदि में कथा भिन्न-भिन्न रूप में मिलती है। स्वयं भारत में बौद्ध और जैन साहित्य में भी वाल्मीकि का अनुसरण नहीं किया गया। श्री तुलसीदास जी का आधार वाल्मीकि नहीं। वास्तव में रामायण एक कथा का नाम नहीं किन्तु अनेक कथाओं का नाम है। ये कथाएँ भारत और भारत से बाहर दूर-दूर फैली हुई हैं। इनका और इनके परस्पर सम्बन्धों का आज तक कोई अध्ययन नहीं हुआ। न ही लोक-कथाओं का हुआ। फा लक फा लाम लावदेश की राजधानी लुआङ् प्रवाङ् के मन्दिरों में भित्तिचित्रों के रूप में शोभायमान है। राजमहल में प्रति वर्ष इसका अभिनय होता है।

* प्रकाण्ड विद्वान, मनीषी, चितक

इसमें नायक राम नहीं रावण है जो अनेक शिरो वाला राक्षस नहीं किन्तु अभिरूपवान् कुमार है। इन्द्र उसके देव हैं। इस कथा में सीता रावण की पुत्री है। तीसरा भेद यह है कि हनुमान् राम के पुत्र हैं।

फा लक फा लाम की कथा का क्षेत्र भारत की सरयू और अयोध्या नहीं किन्तु स्वयं लावदेश है। लावदेश में भी माँ-गंगा नदी (अंग्रेजी में मेकोंग) की घाटी। इस घाटी के असंख्य स्थानों का वर्णन फा लक फा लाम में मिलता है। इसी कारण से इसका प्रचार गाँव-गाँव में हुआ है।

फोम्म-चक बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसका निर्माण बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किया गया। कथा में कहा गया है कि राम बुद्ध गौतम हैं और रावण देवदत्त हैं तथा सीता यशोधरा। राम और रावण का युद्ध गौतम बुद्ध और मार का युद्ध है।

फा लक फा लाम की कथा

प्रस्तावना

जैतवन में इकट्ठे हुए भिक्षुओं को भगवान् बुद्ध ने श्री राम की कथा सुनाईहमारे कल्प से बहुत पूर्व एक ब्राह्मण और उनकी पत्नी अगणित नाम के स्वर्ग से भूलोक में आए। इन्होंने एक नगर की स्थापना की जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ नगर रखा गया। इनके 101 पुत्र हुए जो भूलोक के 101 राजा बने। बहुत वर्ष व्यतीत होने पर एक और कुमार का जन्म हुआ। लाव भाषा में इसका नाम था तप्प रामेश्वर दिया हुआ है। इसके दो कुमार हुए। इनमें से एक का नाम था दशरथ। दशरथ को राजगद्दी न मिली। इसलिए वह असन्तुष्ट होकर बाहर चले गए और माँ-गंगा नदी के दक्षिण तीर पर एक और नगर की स्थापना की। इनके साथ दस सहस्र परिवार गए जो इस नगर में बसे। किन्तु इस क्षेत्र में सप्तशीर्ष नाग का अधिकार था। उसने दशरथ से कहा कि तुम नदी के बाएँ तट पर चले जाओ। दशरथ ने आदेश का पालन किया और शान्तापुरी-सप्तशीर्षनाग नाम की नई नगरी की स्थापना की। यह आधुनिक व्येत्यान् है।

रावणासुर का जन्म

इसी समय में एक ब्राह्मण देवलोक से नीचे उतरे और इन्द्रप्रस्थ की महिला के गर्भ में प्रविष्ट हुए। जो बालक उत्पन्न हुआ वह दस मास विलम्ब से उत्पन्न हुआ। उसके अंग बहुत छोटे थे। उसका नाम थाओ लुम लूत रखा गया। इन्द्र ने इसका पुनर्निर्माण करना चाहा। इसको देवलोक में ले गया और थेने नाम के देवता को दिया। थेने देवता ने इस बालक को ताम्बे के सांचे में ढाला किन्तु लुम लूत जैसा पहले था वैसा ही रहा। थेने देवता ने दूसरी बार चाँदी के सांचे में और फिर सोने के सांचे में और अन्त में स्फटिक के सांचे में ढाला किन्तु सफलता न मिली। थेने देवता ने लुम लूत को इन्द्र के पास पहुँचा दिया। इन्द्र ने हीरे के सांचे में ढाला। लुम लूत सांचे में

से सुन्दर अभिरूप अंगों वाला बनकर निकला। इसकी शोभा इन्द्र के समान थी। इन्द्र ने भविष्यवाणी की कि यह बालक शक्तिशाली, विक्रमशील, तथा बोधिसत्त्व को छोड़कर सब पर विजयी होगा। इन्द्र ने यह भी भविष्यवाणी की कि लुम लूत क्रोधी, कामी और लोभी होगा और अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा।

देवलोक से लुम लूत भूलोक पर आया। उसके हाथ में खड्ग और धनुष थे। देवी मल्लिका के गर्भ में प्रवेश किया। देवी मल्लिका दशरथ के भाई विलुन्ह की रानी थी। विलुन्ह इन्द्रप्रस्थ नगर के सम्राट थे। रानी ने दस मास अधिक समय तक गर्भ धारण किया। तत्पश्चात् धनुष और खड्ग लिए हुए एक बालक का जन्म हुआ जिसको रावणासुर का नाम दिया गया।

श्री राम का जन्म

तीन वर्ष की आयु में रावणासुर ने समस्त विद्याएँ पढ़ने के पश्चात् अपने चचा दशरथ से कहा कि मुझे अपनी कन्या देवी शान्ता दे दो। देवी शान्ता की आयु भी तीन वर्ष की थी। रावणासुर की अजेय शक्ति को जानते हुए दशरथ को देवी शान्ता देनी पड़ी। उसने देवताओं से प्रार्थना कीमुझे एक पुत्र दोजो रावणासुर को जीत सके। इन्द्र ने भावी बुद्ध को भूलोक में भेजा। बुद्ध ने दशरथ की रानी के गर्भ में प्रवेश किया और दो भाई इकट्ठे उत्पन्न हुए। इनके नाम रखे गए श्री लक्ष्मण और श्री राम।

देवी शान्ता की उन्मुक्ति

श्री लक्ष्मण के धनुष की गूँज सारे संसार में फैल जाती थी। श्री राम के धनुष से समस्त आकाश मेघाच्छन्न हो जाता था। पृथ्वी काँपने लगती थी। अपने कुमारी की शक्ति को देखकर महाराज दशरथ ने इनको इन्द्रप्रस्थ नगर भेजा। दोनों भाई मार्ग की नदियों को पार कर के और अनेक संकटों को दूर कर के तीन मास की यात्रा के पश्चात् इन्द्रप्रस्थ नगर पहुँचे। श्री राम ने नगर में प्रवेश किया और शान्ता को उठाकर ले आए। जब रावणासुर को पता लगा तब उसने श्री लक्ष्मण श्री राम और देवी शान्ता का पीछा किया। माँ-गंगा नदी पर युद्ध हुआ, किन्तु गरुड़ और यक्षों की सहायता होते हुए भी रावणासुर पराजित हुआ।

माँ-गंगा नदी को पार करना तथा देवी शान्ता का विवाह

श्री लक्ष्मण और श्री राम ने पराजित रावणासुर को आदेश दियाहमारे लिए एक नौका बनाओ जिसमें प्रासाद हो तथा जो जल और स्थल दोनों पर चल सके। रावणासुर ने अपनी विद्या के बल से इस प्रकार की नौका बनाई। दोनों भाई और उनकी बहन इस नौका पर सवार हुए और शान्तापुरी पहुँचे।

रावणासुर शान्ता के विरह से व्याकुल थे। वे फिर राजा दशरथ के पास गए और देवी शान्ता के लिए प्रार्थना की। देवी शान्ता और रावणासुर का विवाह हुआ। रावणासुर देवी शान्ता को लेकर इन्द्रप्रस्थ नगर पहुँचे और राज्य करने लगे।

ईश्वर (?) की कहानी

रावणासुर का राज्य असह्य था। उसकी पत्नी शान्ता, उसके पिता और पितामह राजधानी छोड़कर पहाड़ों में चले गए। दशरथ भी गद्दी पर राम को बिठाकर इसी पहाड़ पर आकर रहने लगे। इन्द्र ने दशरथ और उनके भाई के रहने के लिए महल बना दिया। इन्द्र ने इनको जादू के अस्त्र शस्त्र तथा इनका प्रयोग करने के लिए मन्त्रों की शिक्षा दी। कुछ समय के पश्चात् श्री राम के पितामह के दो कुमार उत्पन्न हुए। एक का नाम विरूपाक्ष और दूसरे का कुबेर रखा गया। इन्द्र ने श्री राम के पितामह का नाम भी परिवर्तन किया। नया नाम था ईश्वर (?)।

देवी सीता का जन्म

अपनी राजधानी लंका में ले जाने के पश्चात् रावणासुर ने इन्द्र से मन्त्र-विद्या सीखी और देवी सुसदा को भगा कर ले गया। देवी सुसदा व्याकुल हुई और उसने रावणासुर की रानी के गर्भ में प्रवेश किया। रानी ने दस मास अधिक बीत जाने पर देवी सीता को जन्म दिया। देवी सीता ने जन्म के कुछ दिनों पश्चात् अपने पिता पर छुरी से आक्रमण किया। क्रुद्ध होकर रावण ने उसको बेड़े पर बिठाकर लहरों में छोड़ दिया। लहरें बेड़े को एक द्वीप में ले गईं जहाँ एक ऋषि निवास करते थे। ऋषि ने देवी सीता को उठा लिया और अपनी पुत्री बना लिया।

श्री राम और देवी सीता का विवाह

देवी सीता के सौन्दर्य की ख्याति संसार में फैल गई। यह न जानते हुए कि यह मेरी कन्या है रावण ने उससे विवाह करना चाहा, किन्तु वह ऋषि के समय को पूरा न कर सका। ऋषि का समय था कि धनुष पर ज्या बाँधी जाए। वह ज्या न बाँध सका, किन्तु रावण रिक्तहस्त भी न लौटना चाहता था। इसलिए उसने देवी सीता की एक मूर्ति बनाई। उसमें प्राण डाले। उसको देवी सुपो का नाम दिया।

इन्हीं दिनों श्री राम और श्री लक्ष्मण को भी देवी सीता के सौन्दर्य का पता लगा। ये दोनों ऋषि के पास गए। ऋषि ने राम को धनुष दिया। राम ने सरलता से धनुष को उठाया और उस पर ज्या बाँधी।

देवी सीता का हरण

देवी सीता श्री राम की पत्नी बन गई। इससे रावण को बहुत दुःख हुआ। ईर्ष्या हुई। उसने निश्चय किया कि मैं देवी सीता का हरण करूँगा। रावणासुर श्री राम की

अजेय शक्ति को जानता था, इसलिए उसने कूटनीति का प्रयोग किया। उसने स्वर्णमय हरिण को सीता के पास भेजा। सीता ने राम से प्रार्थना की। राम ने हरिण का पीछा किया और उसका बाण से वेधन किया। मरते समय हरिण चिल्लाया किन्तु चिल्लाने की ध्वनि इस प्रकार की थी जिससे सीता और लक्ष्मण को धोखा हो कि राम की ध्वनि है। ध्वनि को सुनकर लक्ष्मण ने देवी सीता को धरणी के समर्पण किया और अपने भाई श्री राम को ढूँढ़ने के लिए चल पड़े। रावणासुर देवी सीता पर आ झपटा और उसको उठाकर ले गया।

श्री राम का वानर-रूप

श्री राम और श्री लक्ष्मण सीता को ढूँढ़ने निकले। भूखे प्यासे जंगल में घूमते हुए श्री राम ने न्यग्रोध वृक्ष के फल को खा लिया जिसमें मनुष्य का रूपान्तर करने की शक्ति थी। खाते ही राम का रूप वानर हो गया।

हनुमान् का जन्म

एक ऋषि ने तपस्या का जीवन छोड़ दिया। सुन्दर युवती की मूर्ति बनाई। उसमें प्राण डाले। फिर उससे विवाह किया। उसका नाम था देवी खेसी।

देवी खेसी को एक लड़की और दो लड़के हुए। लड़की का नाम था फेड्सी। एक दिन फेड्सी जंगल में फूल ढूँढ़ने गई। वहाँ उसने न्यग्रोध का फल खा लिया और खाते ही वानरी बन गई।

वानरी बनने के पश्चात् उसको वानर रूप में श्री राम मिले। दोनों का विवाह हुआ। जो लड़का उत्पन्न हुआ उसका नाम था हनुमान्।

दुन्दुभि और बाली की मृत्यु

दुन्दुभि नाम का एक भैंसा था। उसकी 500 भैंसें थीं जिनसे वह रमण करता था। जब भी किसी बछड़े का जन्म होता वह उसको मार देता था। एक भैंस ने निश्चय किया कि मैं अपनी पुमान् सन्तान को बचाऊँगी। वह सफल हुई। पुमान् बच्चे ने अपने पिता दुन्दुभि पर आक्रमण किया और उसे मारकर अपना नाम दुन्दुभि रख लिया।

तत्पश्चात् युव-दुन्दुभि विजय के लिए बाहर निकला और मुओङ् काशी नाम के नगर में पहुँचा। इस नगर की स्थापना देवी फेड् सी के दो पुत्रों सखिव और फारिचिन्ह अर्थात् बाली और सुग्रीव ने की थी।

यहाँ आकर दुन्दुभि ने बाली की पत्नी देवी कोत्तरत को घायल कर दिया। इस पर बाली और उसके भाई सुग्रीव ने दुन्दुभि पर आक्रमण किया, किन्तु वे दुन्दुभि को जीत न पाए। बाली ने दुन्दुभि से कहाचलो गुहा के अन्दर चलकर मल्लयुद्ध करें। गुहा में प्रवेश करने से पहले बाली ने सुग्रीव से कहा कि यदि तुमको काले रंग का रुधिर बहता दिखाई पड़े तो उसका अर्थ होगा कि मैंने भैंसे को मार दिया। किन्तु यदि

रुधिर का रंग लाल हो तो इसका अर्थ होगा कि भैंसे ने मुझको मार दिया। तब तुम गुहा के द्वार को बन्द कर देना जिससे भैंसा बाहर न निकल सके।

बाली ने भैंसे को मार दिया किन्तु भैंसे का रुधिर वर्षा के पानी में मिल गया और सुग्रीव ने समझा कि मेरा भाई मारा गया सुग्रीव ने गुहा का द्वार बन्द कर दिया। बाली फिर भी गुहा के बाहर निकल आया और भाई पर आरोप लगाया कि तुम मेरा सिंहासन और पत्नी छीनना चाहते हो। यह कहकर उसने सुग्रीव को बाहर निकाल दिया।

घूमते फिरते सुग्रीव को श्री राम मिले। सुग्रीव ने राम को अपनी कहानी सुनाई और श्री राम से सुग्रीव को सहायता करने का वचन दिया। सुग्रीव ने बाली का आह्वान किया। सुग्रीव ने बाली की पत्नी की आँखें निकाल दीं। वह भूमि पर गिर पड़ी। श्री राम ने अपना मानुष रूप धारण किया और बाण से बाली को मार दिया। सुग्रीव राजा बन कर बैठ गया और अपनी सेना श्री राम को अर्पण की।

यक्ष का विध्वंस

यहाँ एक यक्ष की कहानी आती है। इसकी शक्ति तर्जनी अंगुलि में थी। जिस किसी की ओर यह अंगुलि उठाता था वह तत्क्षण मर जाता था।

देवी देवसुता ने उपाय सोचा और यक्ष को एक नृत्य सिखलाया जिससे यक्ष को अपनी अंगुलि अपने सिर की ओर करनी पड़ी। इसके परिणाम-स्वरूप यक्ष मर गया।

श्री राम ने बाली की स्त्री को दोबारा दृष्टि प्रदान की और उससे विवाह कर लिया। दोनों के पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था थाओ खुआने थाओ फा।

युद्ध की सज्जा

सेना इकट्ठी करके श्री राम लंका की ओर चले। कुछ दूर जाकर श्री राम ने अन्वेषण किया कि मेरी सेना में ऐसे कौन से व्यक्ति हैं जो उड़कर समुद्र पार जा सकते हैं। ऐसे केवल दो ही व्यक्ति मिले। ये दोनों श्री राम के पुत्र थे हनुमान् और थाओ खुआने थाओ फा। राम ने इन दोनों को अपनी अँगूठी और आदेश दिया कि यह अँगूठी और मेरे समाचार देवी सीता को पहुँचा दो।

हनुमान् तथा थाओ खुआने थाओ फा की लंका-यात्रा

मार्ग में हनुमान् और उसके भाई एक ऋषि की आज्ञा की अवहेलना करके एक तालाब पर जा पहुँचे। यहाँ दो जोंकें इनको चिपट गईं। ऋषि ने अपनी लाला से उनको छुड़ाया। किन्तु हनुमान् और उसके भाई की आधी शक्ति क्षीण हो गई।

हनुमान् और उसके भाई ने लंका पहुँचकर सुन्दर मानुष रूप धारण कर लिया। ये दोनों देवी सीता के पास पहुँच गए और अँगूठी दे दी।

लंका में दोनों भाइयों ने बहुत उत्पात मचाया। एक रात को रावणासुर के सब लोगों को मन्त्र मुग्ध कर दिया और राजा के घोड़ों को देवी शान्ता के घोड़ों के साथ बाँध दिया और उनके समीप एक पत्र लिख कर छोड़ दिया कि घोड़े तब तक नहीं खुल सकेंगे जब तक रानी राजा को तीन चपत नहीं लगाएंगी। इसका अभिप्राय यह था कि रावण की मन्त्रशक्ति का हास हो जाए।

लंका-दहन

हनुमान् और उसके भाई ने फिर वानर-रूप धारण कर लिया। उनको पकड़ने के लिए बहुत से सैनिक नियुक्त किए गए। हनुमान् और उसके भाई पकड़े गए। सैनिकों से हनुमान् ने कहायदि तुम हमको मारना चाहते हो तो एक ही विधि है। तुम हमारी पूँछ पर कपड़ा बाँध दो और उस पर तेल डालकर आग लगा दो। सैनिकों ने ऐसा ही किया। दोनों वानर उछल पड़े और रावणासुर के महल तथा लंका के समस्त भवनों को आग लगा कर समुद्र में कूद पड़े। तथा समुद्र पार कर वे श्री राम के पास पहुँच गए।

लंका-युद्ध

श्री राम ने रावणासुर से कहादेवी सीता को लौटा दो। थाओ फिक फी अर्थात् विभीषण राजज्योतिषी तथा लंका के उपराज थाओ ईसि ने रावणासुर से कहा कि सीता लौटा दो। रावणासुर बहुत रुष्ट हुआ और तीनों को बाहर निकाल दिया। तीनों श्री राम से जा मिले।

समुद्र पर पुल बनाया गया और श्री राम की सेना ने लंका में प्रवेश किया। यहाँ रावणासुर की सेना के यक्षों से महायुद्ध हुआ। श्री राम की सेना के सेनापति हनुमान् थे और रावण की सेना के सेनापति थे पाया मुओडू से। रावण के सेनापति मारे गए और सेना भागने लगी।

एक दिन ज्योतिषी ने श्री राम से कहा कि आप पर बहुत आपत्ति आने वाली है। पहले वालों को बहुत कड़े आदेश दिए गए परन्तु फिर भी रावणासुर का भेजा हुआ एक नाग सेना में घुस आया और श्री राम को पकड़ कर नागपुरी ले गया। हनुमान्, थाओ खुआने थाओ फा और दो सैनिक नागपुरी में गए और श्री राम को लौटा लाए।

श्री राम की विजय

पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। रावणासुर और श्री राम अपनी-अपनी सेनाओं के अध्यक्ष बने। दोनों ओर से सैनिक बड़ी संख्या में मारे गए। श्री राम को रावणासुर ने एक बाण मारा। श्री राम घायल हुए। हनुमान् गन्धमादन पर्वत पर गए और वहाँ से बैल का गोबर लाए। इससे श्री राम अच्छे हो गए। तत्पश्चात् श्री राम ने मन्त्रशक्ति से रावणासुर को बाण मारा। रावणासुर धरती पर गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गई। रावण के यक्ष भाग गए और श्री राम ने लंका पर अपना अधिकार जमाया।

श्री राम ने विभीषण का विवाह देवी शान्ता से कर दिया और उसको लंका का सिंहासन समर्पण किया। स्वयं देवी सीता को साथ लेकर शान्तापुरी-सप्तशीर्ष-नाग नाम की नगरी में लौट आए।

श्री राम की इच्छा थी कि हनुमान् को मानुष रूप दिया जाए। उन्होंने एक वृक्ष के फल का अन्वेषण कराया जिस को खाकर हनुमान् सुन्दर युवा बन गया।

देवी सीता पर आरोप

एक दिन अपनी सखियों को बताने के लिए देवी सीता ने रावणासुर का चित्र बनाया और उसी समय श्री राम आ पहुँचे। उसने चित्र को पलंग के नीचे छिपा दिया। जब श्री राम पलंग पर बैठे चित्र चिल्ला उठा मैं भी तो तुम्हारे समान शक्तिशाली राजा हूँ। यह उचित नहीं कि तुम मेरे सिर पर बैठो। श्री राम ने पलंग के नीचे से चित्र को निकाला और पूछा कि चित्र किसने बनाया है।

श्री राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि नगर के बाहर जाकर सीता का वध कर दो। उसके रुधिर से भरी हुई तलवार मुझे लाकर दो। श्री लक्ष्मण देवी सीता को जंगल में ले गए। यहाँ इन्द्र ने सीता को बचाया और उड़ने वाले घोड़े पर बिठा कर उसके पोषक ऋषि के पास पहुँचा दिया। लक्ष्मण सीता के रुधिर के स्थान में एक कुत्ते के रुधिर से भरी हुई तलवार श्री राम के पास ले गए।

श्री राम और देवी सीता का मिलन

तीन मास के पश्चात् देवी सीता के एक लड़का हुआ जिसका नाम रखा गया थाओ फाबूत। ऋषि ने इसको मन्त्रविद्या सिखलाई।

एक दिन यह लड़का बहुत समय तक जंगल से लौटकर नहीं आया और देवी सीता को चिन्ता हुई। ऋषि ने लड़के की मूर्ति बनाई और उसमें प्राण डाल दिए। इस मूर्ति का नाम रखाथाओ फारुप।

ये दोनों लड़के शूरवीर बने। एक बार इनकी श्री राम से लड़ाई हो पड़ी। जब राम को पता लगा कि ये कौन हैं तो बहुत प्रसन्न हुए और उनके साथ देवी सीता के पास जा पहुँचे।

यह है श्री राम का इतिहास जिसको संसार जानता है, जिसने शान्तापुरी-सप्तशीर्ष-नाग पर राज्य किया और जिसके पश्चात् थाओ फाबूत सिंहासनारूढ़ हुए।

थाई लू की रामायण

एक बार जब भगवान् बुद्ध उपदेश कर रहे थे तब मार ने उपदेश में विध्वन डाला। बुद्ध भगवान् के शरीर से रश्मियाँ निकलीं और मार भाग गया।

भिक्षु चकित हुए। भगवान् बुद्ध ने कहापूर्व जन्मों में भी मैंने कई बार मार पर विजय प्राप्त की है। उस विजय की कथा इस प्रकार है।

एक बार लंका में यक्ष राज्य करता था। उस समय लंका में न कोई राज्य था न राज्य-व्यवस्था। मैंने लंका को अपने अधिकार में लिया और यक्ष भाग निकला। मैंने वहाँ धर्म की स्थापना की और विशाल चैत्य का निर्माण किया। देश में शान्ति फैली। देश समृद्धिशाली बना। 101 राजाओं ने मेरा आधिपत्य स्वीकार किया।

उस समय लंका में पाया इलम्फा और उसकी पत्नी देवी अंखाती राज्य करते थे। इनके कोई सन्तान न थी। इन्होंने देवता से प्रार्थना की और देवता ने तोसने नाम के ऋषि को इनकी कामना पूरी करने के लिए भेजा। एक देवता ने रानी के गर्भ में प्रवेश किया। दस मास विलम्ब कर के एक अभिरूपवती कन्या का जन्म हुआ। इसका नाम देवी कुती रखा गया।

रावण का जन्म

पिता ने देवी कुती का विवाह करना चाहा। देवी कुती ने स्वीकार न किया और तोसने ऋषि के पास जंगल में रहने लगी। एक दिन एक ब्राह्मण इसको ढूँढ़ने गया और उसको बतलाया कि तुम्हारे तीन पुत्र होंगे। ब्राह्मण ने उसकी नाभि को तीन बार छुआ और लोप हो गया। कुछ समय पश्चात् देवी कुती ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसके दस सिर थे। इसका नाम फोम्मचक रखा गया। फोम्मचक का अर्थ है ब्रह्मजात। कुछ समय पश्चात् दो अन्य पुत्रों का जन्म हुआजिनका नाम था खन्नप और पियस्स।

बड़े होने पर तीनों लड़के अपने ब्राह्मण पिता से मिले। पिता ने कहावर माँगो।

रावण ने संसार में सब से अधिक शक्तिशाली होने का वर माँगा। ब्राह्मण ने उसको मन्त्रशक्ति वाला धनुष दिया और कहा कि बुद्ध और वानर को छोड़ कर तुम अन्य सब प्राणियों पर विजय पाओगे।

दूसरे पुत्र ने वर माँगा कि मैं वर्षभर सोता रहूँ। पिता ने उसकी कामना पूरी की।

तीसरे पुत्र ने वर माँगा कि मैं सब से अधिक बुद्धिमान् और धर्म-परायण बनूँ। पिता ने उसकी भी कामना पूरी कर दी।

कुछ समय पश्चात् तीनों लड़कों ने लंका जाने का निश्चय किया। रावण ने अपने छोटे भाई पियस्स को अपने पिता के पास सिंहासन और छत्र लाने के लिए भेजा।

इन्हीं दिनों रावण ने श्री एस्वने की पुत्री देवी मन्तलि से विवाह कर लिया।

श्री एस्वने और दशरथ का इतिहास

श्री एस्वने तबलिस नाम के देवलोक में राज्य करते थे। मदिरा-पान के कारण उनका पतन हुआ और वे भूलोक में गिर पड़े। इन्होंने इन्द्र से युद्ध किया।

दशरथ नाम के एक राजा थे जिनकी तीन रानियाँ थीं। एक का नाम देवी कुसुन, दूसरी का नाम देवी मित्ता, तीसरी का नाम केसी थी। दशरथ इन्द्र के मित्र थे और इन्होंने एस्वने को पराजित करने के लिए इन्द्र की सहायता की।

श्री राम का जन्म

जब से रावण ने लंका पर राज्य करना आरम्भ किया तब से लोग दुःखी हो गए। देवताओं ने उसको शाप दिया। इन्द्र ने रावण के पिता ब्रह्मा से कहा। पिता ने बतलाया कि केवल बुद्ध और वानर रावण को जीत सकते हैं। ब्रह्मा ने पृथ्वी पर अनेक देवताओं को भेजा और इनमें भावी बुद्ध भी थे। देवता दशरथ की रानियों के गर्भ में प्रवेश हुए। दस मास के पश्चात् रानी कुसुन ने श्री राम को जन्म दिया, देवी मित्ता ने लक्ष्मण को और देवी केसी ने भरत को।

देवी सीता का जन्म

एक दिन रावण के उद्यान में एक वृक्ष से जिसका नाम निथोने होम था एक कन्या उत्पन्न हुई। माली ने कन्या का अपने स्वामी को उपहार दिया। किन्तु उसके देखते ही कन्या ने यक्ष का रूप धारण कर लिया। रावण ने उसको घड़े में बन्द कर दिया और नदी में फेंक दिया। लहरें कलश को कन्नकपुरी अर्थात् जनकपुरी के समीप ले गईं। घड़ा तट के बालू में घुस गया। जनक राजा के कोई सन्तान न थी। जनक राजा को एक ऋषि ने सूचना दी कि नदी तट के बालू में देवी सीता नाम की सुन्दर बालिका है। राजा जनक ने उसको ढूँढ़ लिया और उसको अपनी पुत्री बना लिया।

श्री राम का विद्याध्ययन

मन्त्रविद्या सीखने के लिए श्री राम एक ऋषि के पास गए, जिन्होंने श्री राम को कौवे भगाने पर लगा दिया। वे कौवे ऋषि को बहुत तंग करते थे। राम ने अपनी मन्त्रशक्ति वाले धनुष से एक बार में ही सब कौवों को डरा कर भगा दिया। ऋषि प्रसन्न हुए और इन्होंने श्री राम को अपना शिष्य बना लिया।

श्री राम और देवी सीता का विवाह

देवी सीता बड़ी हुई और उसके सौन्दर्य की ख्याति चारों दिशाओं में फैल गई। 101 राजा उसके पाणिग्रहण के लिए राजा जनक के पास आए। राजा जनक ने प्रतिबन्ध लगाया कि जो कोई मेरे धनुष को उठा कर उसमें रस्सी बाँधेगा उसके साथ

सीता का विवाह होगा। किन्तु किसी राजा में भी इतनी शक्ति न निकली। अन्त में ऋषि राम को अपने साथ जनकपुरी लाए। राम ने सरलता से धनुष को उठाया और रस्सी बाँधी। श्री राम का देवी सीता से विवाह हुआ, किन्तु साथ ही 101 राजा राम से घृणा भी करने लगे।

श्री राम का वनवास

दशरथ ने देखा कि मेरी शक्ति क्षीण हो रही है। उसने राम को सिंहासन देने का विचार किया किन्तु तीसरी रानी ने अपने वर का स्मरण दिलाया और याचना की कि मेरे पुत्र भरत का अभिषेक करो। महाराज दशरथ को विवश होकर ज्येष्ठ पुत्र को बारह वर्ष तक वन में जाकर रहने का आदेश देना पड़ा। श्री राम मान गए। सिंहासन अपने छोटे भाई को दिया और देवी सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन में चले गए।

कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथ का देहान्त हुआ और मन्त्रिमण्डल ने भरत को गद्दी पर बैठाना चाहा किन्तु भरत न माने। भरत राम के पास गए और उनसे सिंहासन पर बैठने की याचना की। श्री राम ने स्वीकार न किया। इन्होंने कहा कि यह मेरे पिता के आदेश के विरुद्ध है। भरत नगर में लौट आए किन्तु सिंहासन पर न बैठे। सिंहासन रिक्त रहा। भरत वनवासी तपस्वी के समान जीवन व्यतीत करने लगे।

हनुमान् का जन्म

एक ऋषि ने तपस्वी जीवन छोड़ कर एक सुन्दर कन्या की मूर्ति बनाई। उसमें प्राण डाले, उससे विवाह किया और गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लगे। इस कन्या का नाम था देवी खे। देवी खे की दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं देवी मेथो और देवी नाडू लिडू लोम। नाडू लिडू लोम का रूप वानरी के समान था और यह वायुभक्षा थी। नाडू लिडू लोम के सौन्दर्य से वानरों के राजा पवन मुग्ध हुए और इन्होंने नाडू लिडू लोम के मुख में लघुशंका की। इसके परिणाम-स्वरूप दस मास विलम्ब करके हनुमान् का जन्म हुआ। अपनी मृत्यु से पहले नाडू लिडू लोम ने अपने पुत्र को लाल रंग के पके फल खाने का निषेध किया था। किन्तु एक दिन सूर्य दिखाई देने पर हनुमान् उसको खाने के लिए ऊपर कूदे।

पृथ्वी पर आकर हनुमान् ने एक ऋषि का उपहास उड़ाया और ऋषि ने उसकी समस्त शक्ति छीन ली।

परिमोक और कलिंग का इतिहास

दिन रात घूमते हुए राम और लक्ष्मण वानरों की नगरी किस्सा अर्थात् किष्किन्धा पहुँचे। यहाँ परिमोक नाम के वानर राज्य करते थे। परिमोक के भाई का नाम कलिंग था और पुत्र का आङ्कोत।

जंगल में एक भैंसा रहता था जिसकी 500 पत्नियाँ थीं। यह भैंसा अपने सब पुत्रों को मार डाला करता था। एक भैंस ने अपने पुत्र की रक्षा की, और उसने बड़े होकर अपने पिता को मार डाला। पिता को मार कर इसने किष्किन्धापुरी पर आक्रमण किया। राजा परिमोक की हार हुई। हार कर राजा परिमोक एक गुहा में जा छुपे। भैंसे ने इनका पीछा किया और गुहा में घुस गया। राजा परिमोक ने अपने भाई कलिंग से कहा यदि लाल रंग का रुधिर बहता दिखाई दे तो इसका अर्थ होगा कि भैंसे ने मुझको मार दिया। तत्पश्चात् तुम गुहा का द्वार बन्द कर देना। कलिंग ने गुहा के द्वार को बन्द कर दिया और किष्किन्धापुरी में आकर यह घोषणा की कि मेरा भाई मारा गया। कलिंग स्वयं किष्किन्धा का राजा बन गया। परिमोक ने गुहा में भैंसे को मार डाला और गुहा के बाहर निकल आया। बाहर निकल कर उसने कलिंग पर आरोप लगाया कि तुमने मुझको मार कर मेरा सिंहासन छीनने का यत्न किया है। यह आरोप लगा कर कलिंग को किष्किन्धा से बाहर निकाल दिया और उसकी पत्नी को हस्तगत कर लिया।

स्वर्णमृग की कहानी

रावण ने अपनी बहिन देवी थारीकात्ता और उसकी दो कन्याओं को अपने और किष्किन्धा राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिए भेजा था। एक दिन इन तीनों को देवी सीता, उसके पति तथा देवर दिखाई पड़े। इन्होंने इनको मारना चाहा किन्तु लक्ष्मण ने दोनों लड़कियों को बाण से वेधन कर दिया और श्री राम ने उनकी माता को भगा दिया। यह लंका लौटी और रावण को सब वृत्तान्त सुनाया। वैर प्रतिशोध करने की कूटनीति बनाई गई। देवी थारीकात्ता ने स्वर्णमृग का रूप धारण किया और राम लक्ष्मण तथा देवी सीता के सामने से भाग निकली। देवी सीता ने उसको पकड़वाना चाहा। श्री राम स्वर्णमृग के पीछे भागे और उसको बाण से मार दिया। मरते समय स्वर्णमृग ने राम के समान स्वर में दुःख भरा चीत्कार किया। इसको लक्ष्मण ने सुना और समझा कि राम की ध्वनि है। लक्ष्मण ने देवी सीता को देवी धरणी के समर्पण किया और अपने भाई राम को ढूँढ़ने चला। रावण पास छिपा हुआ था। वह सीता पर आ झपटा। वह सीता को उठा न सका, क्योंकि देवी धरणी ने सीता की टाँगों को पकड़ लिया था।

जब लक्ष्मण राम के पास पहुँचे तो राम को आश्चर्य हुआ और पूछा कि देवी सीता को छोड़ कर यहाँ क्यों चले आए। लक्ष्मण ने कहा देवी धरणी को सौंप आया हूँ। राम ने उत्तर दिया देवी धरणी पर विश्वास नहीं। ज्यों ही राम ने ये शब्द कहे देवी धरणी ने सीता के पाँव छोड़ दिए और रावण उसको उठा कर लंका ले गया।

सीता का अन्वेषण

जब राम और लक्ष्मण लौटे तो उनको सीता न मिली। वे सीता को ढूँढ़ने के लिए चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उनकी वानर कलिंग से भेंट हुई। कलिंग ने उनको बतलाया कि देवी सीता को रावण उठाकर ले गया है। कलिंग ने राम से प्रतिज्ञा की कि यदि आप राजा परिमोक को मारने में मेरी सहायता करेंगे तो मैं देवी सीता को ढूँढ़ने में आपकी सहायता करूँगा।

राम ने यह बात स्वीकार की। कलिंग ने अपने भाई परिमोक का आह्वान किया और राम ने उसको मार दिया। कलिंग राजा बन गया और वानर-सेना इकट्ठी कर के राम की सेवा में समर्पण की। सेना के तीन सेनाध्यक्ष थे हनुमान्, आङ्कोत, और मोमि। कलिंग, राम और लक्ष्मण की अध्यक्षता में वानर-सेना लंका की ओर चली। किन्तु समुद्र-तट तक आकर रुक गई। समुद्र को पार न कर सकी।

हनुमान् की लंका-यात्रा

देवी सीता का समाचार जानने के लिए श्री राम ने हनुमान् को लंका भेजा। श्री राम ने हनुमान् को अपनी अँगूठी दी और कहा कि यह देवी सीता को दे देना। लंका पहुँच कर हनुमान् एक ऋषि से मिले जिन्होंने उसकी शक्ति को कई गुना बढ़ा दिया। इसके पश्चात् हनुमान् देवी सीता के पास पहुँचे और उसको राम की अँगूठी दे दी।

रावण की सेना यक्षों की थी। हनुमान् को उनके साथ युद्ध करना पड़ा किन्तु अन्त में पकड़ा गया। हनुमान् ने यक्षों से कहा कि यदि तुम मुझे मारना चाहते हो तो केवल एक ही उपाय है कि तुम तेल में कपड़ा भिगो कर मेरी पूँछ पर लपेट दो और उस पर आग लगा दो। यक्षों ने ऐसा ही किया। हनुमान् कूदा और सारी लंका को आग लगा दी। लौटते समय हनुमान् ने वायाखंक नाम के महान् योद्धा का आह्वान किया और उसको मार डाला। तत्पश्चात् श्री राम के पास पहुँच कर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

लंका-युद्ध

श्री राम के आदेश से वानरों ने समुद्र पर पुल बनाया। पियस्स नाम के ज्योतिषी ने अपने भाई रावण को बहुत समझाया कि राम को सीता लौटा दो। रावण झुंझलाया और उसने पियस्स को समुद्र में फेंक दिया। श्री राम ने पियस्स को बचा लिया। पियस्स राम की सेना में सम्मिलित हो गए। राम ने आंखोत को रावण के पास भेजा कि सीता को लौटा दो किन्तु रावण नहीं माना। युद्ध आरम्भ हुआ।

राम रावण की शक्ति को जानते थे। इसलिए उसकी शक्ति को तोड़ने के लिए उन्होंने हनुमान् को रावण की सेना में भेजा। हनुमान् रावण का सेनापति बन गया और

राम की विजय हुई। रावण हार कैसे मानता। वह स्वयं अपनी सेना का अध्यक्ष बना और राम पर आक्रमण किया।

राम रावण को पराजित न कर सके। पियस्स के परामर्श से राम ने हनुमान् को फिर भेजा। हनुमान् ने रावण का रूप धारण किया और जिस ऋषि के पास रावण का हृदय रखा हुआ था उससे ले आया और लाकर राम को दे दिया। हृदय मिलने पर राम ने रावण का सिर काट लिया और विजय प्राप्त की।

देवी सीता की परीक्षा

जब देवी सीता ने देखा कि राम को मेरे आचरण पर सन्देह है तो उसने एक चिता बनाई, उसको आग लगाई और उसमें कूद पड़ी। जैसे ही सीता कूदी अग्नि बुझ गई। श्री राम को विश्वास हो गया कि सीता पवित्र है और वह उसको अपने साथ ले गए।

पियस्स को लंका का राजा बना कर राम लौट पड़े और लौटते समय जंगल में प्रवेश करने से पहले हनुमान् से पराजित रावण के अन्तिम पुत्र पेमाले के आक्रमण का निवारण करना पड़ा।

श्री राम, उनकी पत्नी और भाई दोबारा जंगल में पहुँच गए जहाँ राजा दशरथ ने उनको बारह वर्ष के लिए निर्वासित किया था।

देवी सीता पर आरोप

बारह वर्ष समाप्त होने पर भरत और नगर के प्रतिष्ठित जन राम के पास आए और उनसे प्रार्थना की कि आप अपने पिता के सिंहासन को सुशोभित करें। श्री राम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और राज्य का नाम एकराठ रखा।

एक दिन जब देवी सीता नहा रही थीं, रावण की बहन नया रूप धारण कर के आई। सीता से प्रार्थना की कि रावण का चित्र बनाओ। जैसे ही चित्र पूरा हुआ उसमें प्राण आ गए। देवी सीता चित्र को उठा कर ले जाने लगी कि उस समय श्री राम आ पहुँचे। व्याकुल होकर सीता ने चित्र को पलंग के नीचे छिपा दिया। जब राम पलंग पर बैठे, चित्र से ध्वनि आई, मेरे सिर पर मत बैठो मैं भी तुम्हारे समान राजा हूँ। राम को विश्वास हो गया कि सीता को रावण से स्नेह है। राम ने सीता की एक न मानी। लक्ष्मण से कहा कि इसका वध कर दो। इन्द्र बीच में आ गए और लक्ष्मण ने सीता को जाने दिया। लक्ष्मण सीता के हृदय के स्थान पर कुत्ते के हृदय को निकाल कर अपने भाई के पास ले गए।

लोम और सेंगवत का जन्म

एक श्वेत भैंसे का रूप धारण कर इन्द्र देवी सीता को एक ऋषि के पास ले गए। यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम लोम रखा गया। प्रायः देवी सीता

अपने पुत्र को ऋषि के पास छोड़कर स्वयं जंगल में फल मूल ढूँढ़ने जाया करती थी। एक दिन वह अपने पुत्र को अपने साथ ले गई। ऋषि ने समझा कि लोम खो गया। माता को दुःख होगा इसलिए उसने लोम की रूपाकृति वाली एक मूर्ति बनाई और उसमें जीवन का संचार किया। देवी सीता ने इस दूसरे पुत्र को भी स्वीकार किया और उसका नाम सेंगवत रखा।

राम और सीता का पुनर्मिलन

दोनों बालक शूरवीर और साहसी थे। एक बार अनजाने राम और लक्ष्मण से इनका युद्ध हो गया और दोनों मारे गए। ऋषि ने दोनों को फिर जीवित कर दिया। राम बहुत प्रमोद के साथ पत्नी और बच्चों से मिले। सब को अपने साथ ले गए। राम के पश्चात् लोम राजा बने।

इस कथा में जो पात्र आए हैं उनका वास्तविक परिचय नीचे देते हैं

प्राचीन काल के रावण हमारे देवदत्त हैं। देवी थारीकात्ता जिसने स्वर्णमृग का रूप धारण किया था वह हमारे बुद्ध भगवान् की शत्रु किंचिमनकिव है। जिस ऋषि ने राम को शिक्षा दी थी वह हमारे समय का अनुरुद्ध थेर है। हनुमान् बुद्ध का शिष्य मोग्गलायन थेर है। कलिंग अनुत्तर थेर है। श्री दशरथ बुद्ध के पिता शुद्धोदन हैं। लक्ष्मण आनन्द थेर है। जिस ऋषि ने राजा जनक को देवी सीता का समाचार दिया था वह आधुनिक कश्यप थेर है। पियस्स ज्योतिषी श्री अंखुरी थेर हैं। देवी सीता यशोधरा हैं। राम हमारे समय के गौतम बुद्ध हैं ॥

कला

शंकर पुणतांबेकर*

कला, धर्म, विज्ञान ये प्रकृति के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं और मनुष्य के चेतन विकास के द्योतक हैं। प्रकृति की विभिन्न छटाओं से मनुष्य चमत्कृत था और उसका तन ही नहीं मन-मस्तिष्क भी उससे पोषित था। कमल, मोर, उषा, चाँद, बादल, नदी, पहाड़, जंगल उसके आह्लाद के विषय थे और इस आह्लाद में वह नाच उठता, गुनगुनाने लगता अथवा उसमें खो जाता।

अवश्य ही प्रकृति की सुन्दरता कला की जननी है। सुन्दर मोर को नाचते देख मनुष्य भी नाचा। भौरा सुन्दर नहीं था, पर उसकी गुनगुनाहट मधुर थी, सो उसे सुन मनुष्य भी गुनगुनाने लगा। प्रकृति की नाना छटाएँ, सो प्रतिक्रिया-स्वरूप मनुष्य की नाना कलाएँ।

किन्तु कला केवल सुन्दरता अथवा मधुरता की प्रतिक्रिया नहीं है। वह और भी कुछ है। जैसा कि कहा मनुष्य प्रकृति के आह्लाद में खो भी जाता है। यह खो जाना कला को सामान्य प्रतिक्रिया से बिलकुल अलग बना देता है, उसका मन-प्राण से सम्बन्ध जोड़ देता है। कहें कि उसे भव्य से दिव्य बना देता है।

यह भव्य से दिव्य क्या है? दर्शन या चिन्तन की भाषा में कहें तो भव्य भौतिक है और दिव्य आध्यात्मिक। किन्तु अनुभूति या कला की भाषा में भव्य को सुन्दर और दिव्य को कल्पना कहेंगे। कला केवल सुन्दर या उसकी प्रतिक्रिया नहीं है वह कल्पना या उसकी प्रतिक्रिया भी है। इस तरह कला वह जो सुन्दर भी कल्पना भी।

चन्द्रमा कैसा प्यारा-प्यारा है। यह एक प्रतिक्रिया। चन्द्रमा कैसा हँस रहा है। यह एक प्रतिक्रिया।

दूसरी प्रतिक्रिया में कल्पना है। हँसता तो मनुष्य है। इस तरह चन्द्रमा मुख बन गयासुन्दर मुख जो मात्र-कल्पना है। प्यारा-प्यारा चन्द्रमा हमारे मन-मस्तिष्क में ऐसी सघनता से बिम्बित नहीं होता जैसा हँसता चन्द्रमा कहने से होता है।

तो क्या कला में सब-कुछ सुन्दर और मधुर होता है जिसे बिम्बित करने को कल्पना काम करती है? हाँ, जहाँ तक कला के उद्गम का प्रश्न है उसमें मूलतः सुन्दर

और मधुर ही रहे हैं। एक बात और। उद्गम की भाँति कला का लक्ष्य भी सुन्दर और मधुर होता है।

सुन्दर सापेक्ष शब्द है, इस तथ्य को अपनी जगह ठीक मानते हुए भी हम कहेंगे कि जो मोहक-आकर्षक है सो है। जैसे जो मानवीय मूल्य हैं सो हैं। अब जो सुन्दर है वही कला का विषय नहीं होता। सुन्दर को उभारने के लिए उसमें असुन्दर का समावेश होता है। यही नहीं सुन्दर को अपने अस्तित्व के लिए असुन्दर का मुकाबला करना पड़ता है। जैसे राम को रावण का। प्रकाश को अँधेरे का। वृक्ष को शिशिर का।

जब हम कहते हैं सुन्दर सापेक्ष शब्द है तो सुन्दर की व्याप्ति घट-बढ़ जाती है। वह केवल दृष्टि का विषय नहीं रह जाता, रुचि स्थल-काल भी उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। एक छोटे-से उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। भगवान सुन्दर है मन्दिर के गर्भ-गृह में घर के गर्भ-गृह में नहीं, इसी तरह पत्नी सुन्दर है घर के गर्भ-गृह में मन्दिर के गर्भ-गृह में नहीं।

सुन्दर प्रथमतः 'आँख' का विषय हो मोहक-आकर्षक, पर अन्ततः सुन्दर तभी सुन्दर है जब वह 'दृष्टि' का विषय बनता है। आँख संस्कार होती ही है ऐसा नहीं, दृष्टि संस्कार का ही दूसरा नाम है।

संस्कार रुचि का परिष्कार करता है और रुचि के इस परिष्कार में कला का भी सहयोग होता है। कला इसीलिए जहाँ सुन्दर का आविष्कार है वहाँ रुचि का परिष्कार भी है। तभी ऊपर कहा है कि कला का उद्गम जहाँ सुन्दर है वहाँ उसका लक्ष्य भी सुन्दर है। कला की यात्रा ही सुन्दर से सुन्दर की ओर है।

हाँ, ऊपर मैं सुन्दर के साथ कल्पना की बात भी कर रहा था। प्रकृति के सुन्दर को देख उसमें खो जानेवाली बात और उसमें से कल्पना की बात। कल्पना ने प्रकृति के सुन्दर को सजीव बनाया। पहले यह सजीव 'कौन हो तुम?' के रूप में गूढ़ था जिसमें से ईश्वर की उत्पत्ति हुई किन्तु बाद में यह सजीव इस धरती का भी प्राणी बन गया। 'कौन हो तुम?' के गूढ़ में से ईश्वर की उत्पत्ति हुई हो, और वह धर्म का प्राणतत्व बन गया हो, तथापि यह कला का भी विषय था। भव्य में दिव्य।

ठीक है कि मनुष्य समाजशील प्राणी है, पर मनुष्य ही विश्व में एकमात्र प्राणी है जो कल्पनाशील है। रूढ़ भाषा में वह विचारशील है। कल्पनाशीलता में से ही मनुष्य विचारशील बना। कल्पना प्रथम चरण, आगे विकास के साथ विचार द्वितीय चरण। या कह सकते हैं कि कल्पना विचार की जननी है। 'कौन हो तुम?' प्रश्न का उत्तर 'ईश्वर' प्रथम कल्पना ही था और आगे वह विचार में रूढ़ हुआ।

पहाड़, नदी, जंगल, चन्द्र, सूर्य, बादल, मोर, कोयल, हंस आदि से मनुष्य के मानस में नाना कल्पनाएँ उभरने लगीं। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, बलि, गौतम, विश्वामित्र, लक्ष्मी, सरस्वती, रति आदि की सृष्टि हुई। यहाँ मुझे कल्पना का क्रमगत इतिहास प्रस्तुत नहीं करना है और वह किया भी नहीं जा सकता। यहाँ मुझे केवल यह कहना

* 2 मायादेवी नगर जलगाँव-2, 425002 0257-2269967

है कि प्रकृति की चेतना और मनुष्य के मानस से सृष्टि को नया रंगरूप प्राप्त हुआऔर इसे हम कला कह सकते हैं।

‘प्रकृति की चेतना’ शब्द का प्रयोग यहाँ मैंने जानबूझकर किया है। प्रकृति की तरल नदी में या तालाब में थिरकते हंस में ही चेतना नहीं है उसके जड़ पहाड़ में या जंगल में, स्थिर खड़े वृक्ष में भी चेतना है। फिर प्रकृति की यह चेतना मानव-प्रदत्त चेतना है। चाँदनी में परी मानव-प्रदत्त ही तो है।

हाँ, ‘चाँदनी में परी’ जब कला बनी तो यही परावर्तित होकर अँधेरे मानस में परी की चाँदनी बनी। और यही कला का धर्म है।

मैं रेगिस्तान में से चला जा रहा हूँ। आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ कुछ नहीं है सिवा बालू के।

बड़ी दूभर, अत्यन्त रुक्ष, नितांत शून्य ऐसी है यह यात्रा। हाँ, एक साथी है इस यात्रा में। मेरे ही संग-संग चल रहा है। दोनों परस्पर हँस-बोल लेते हैं। उतनी ही राहत।

पर राहत की बजाय यात्रा का कष्ट बढ़ जाता है जब साथी ऐसी-वैसी बातें करने लगता है।

एक नमूना पेश है। यही है जिन्दगी! चलते जाना-चलते जाना! रेगिस्तान में चल रहे हैं हम। तथापि हम जिन्दगी को अपने ढंग से जी सकते हैं, जिन्दगी का कोई लक्ष्य निर्धारित कर जी सकते हैं। हम अपने सुख-दुख की चिन्ता न कर ऐसे जी सकते हैं कि जिसकी अपनी महक हो जैसी चंदन की होती है, जिसमें विवेकशीलता और न्यायबुद्धि हो जैसी हंस की होती है और हमारा हृदय हो शान्त सरोवर-सा जिसमें झाँककर हम अपने को नित्य परखते रहें कि मैं कहीं दैत्य तो नहीं हूँ। लेकिन होता यह है कि जो सम्पन्न होते हैं धनसम्पन्न अथवा सत्तासम्पन्न वे इन बातों की चिन्ता नहीं करते, अपने ही अहं में जीते हैं।

मैं साथी की बात सुनते-सुनते सोचता हूँ उससे कहूँ, बस चुप करो। इसलिए कहना चाहता हूँ कि उसकी एक-एक बात के साथ बालू पर पड़ते मेरे कदम और भारी हो जाते हैं, सिर पर तपता सूरज और तेज।

वास्तव में वह जो कुछ सुना रहा था उसमें ऐसा-वैसा कुछ नहीं था। जिन्दगी का सत्य भरा हुआ था उसमें। इस सत्य से वह मुझे बता रहा था कि मैं रेगिस्तान को लेकर न रोऊँ। अपने लिए तो सभी जीते हैं, पर मैं सृष्टि के उस रूप को भी देखूँ जिसे अपनाकर मैं केवल मैं न रह जाऊँ। वह मुझे जीवन के अर्थ से अवगत करा रहा था।

मेरी हाँ-हूँ न पा साथी आप ही चुप हो जाता है। मैं राहत की साँस लेता हूँ।

इसके विपरीत कुछ देर बाद साथी कुछ और ही सुनाता है।

एक गुरु था। श्वेत वस्त्रधारी। कुटिया में रहता था। कुटिया छोटी थी, हाँ उसका आँगन बड़ा था जिसके पेड़ के नीचे वह बालकों को पढ़ाता था। गुरु कहीं

आता-जाता नहीं था, अपनी कुटिया भली अपना काम भला। हाँ, तीज-त्योहार पर वह मन्दिर अवश्य जाता।

एक बार वह मन्दिर को चला तो क्या देखता है कुटिया से मन्दिर तक पूरा रास्ता गुलाब की पंखड़ियों से भरा हुआ है। ये पंखड़ियाँ आकाश की परी ने बिछाई थीं।

तीज-त्योहार को राजा भी मन्दिर जाता और गुरु की भाँति पैदल ही जाता। राजा ने जब गुरु के रास्ते के बारे में सुना तो वह जलभुन गया। अगली बार जब वह मन्दिर को चला तो दरबारियों को आदेश दिया, मेरा रास्ता फूलों से बिछा दो।

कैसे बिछा दें! दरबारियों ने कहा, सारे फूल परी ने पहले ही गुरु के रास्ते पर बिछाने के लिए तोड़ लिए हैं।

सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया। बोला, परी को मेरे मुकाबले एक राजा के मुकाबले गुरु प्यारा हो गया! उसे मेरे सामने पेश करो और कहो कि वह गुरु का नहीं, मेरा रास्ता फूलों से भरे। लेकिन दरबारी परी को राजा के सामने हाजिर नहीं कर सके। वह उन्हें कहीं मिली ही नहीं। दरबारियों ने गुरु से उसका पता पूछा। गुरु ने कहा, मैं नहीं जानता वह कहाँ रहती है। यह भी नहीं जानता कि वह मेरा रास्ता फूलों से क्यों भर देती है।

आखिर एक बूढ़े ने परी का पता दिया। वह एक चंदन के वृक्ष में रहती है जो पूर्व दिशा के सरोवर के किनारे पर है। बूढ़े ने यह भी बताया कि परी राजा का रास्ता फूलों से नहीं भरेगी, क्योंकि महल के आँगन में बबूल के वृक्ष हैं। वह गुरु को इसलिए चाहती है कि गुरु अपने लिए कुछ नहीं चाहता, ज्ञान बच्चों को लुटा देता है और अपने आँगन में जो आम का पेड़ है उसके सारे फल गरीबों में बाँट देता है। परी कहती है राजा तो लोगों को बबूल के काँटे बाँटता है सो वह गुरु-जैसा प्यारा-प्यारा कभी नहीं बन सकता।

राजा दरबारियों से खबर पाकर चंदन के वृक्ष के पास पहुँचा। परी ने चंदन में से ही राजा से कहा, चंदन बनो गुरु की भाँति। मैं तुम्हारा रास्ता भी फूलों से भर दूँगी।

राजा को यह सुन क्रोध आया और उसने चंदन वृक्ष कटवा फेंका। लेकिन अगले पर्व पर भी राजा ने देखा गुरु का रास्ता फूलों से बिछ गया है। परी चंदन से निकलकर सरोवर के हंस में जा बैठी थी। राजा ने हंस के पास जाकर कहा, तुम नहीं मानोगी? मेरा रास्ता फूलों से नहीं भरोगी?

हंस में से परी ने कहा, भरूँगी। हंस की तरह विवेकशील बनो, दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करनेवाले हंस की तरह जैसे कि गुरु हैं। राजा को फिर गुस्सा आया और हंस को मरवा दिया।

इस बार परी सरोवर में ही समा गई और गुरु का रास्ता फूलों से भरते परी बाज नहीं आ रही है यह देख राजा सरोवर पर पहुँचा। सरोवर में से परी ने कहा, मैं तुम्हारा

रास्ता फूलों से भर सकती हूँ, तुम यदि एक बार, सिर्फ एक बार अपना चेहरा सरोवर में देख लो। सोने-चाँदी में अपना चेहरा देखते हो तो वह तुम्हें दैत्य से देव नजर आता है। सरोवर में देखोगे तो अपने को ठीक से पहचानोगे और महल के आँगन के बबूल के वृक्ष कटवा फेंकोगे।

स्पष्ट था, राजा अपनी प्रकृति के अनुरूप बराबर क्रुद्ध हुआ और उसने सरोवर को तोड़ देने का हुक्म जारी किया। और इसके बाद परी जानते हो कहाँ जा समाई? वह चाँद में, बादलों में जा बैठी जिन पर राजा का बस नहीं चला। और जा बैठी सरकंडे में जिसकी लेखनी बनती है। सरकंडे को राजा ने जितना मिटाया उतना ही वह बढ़ता गया।

साथी बोलता जा रहा था, बोलता जा रहा था और मैं उसमें डूबता चला गया। मैं भूल जाता हूँ कि मैं रेगिस्तान में चल रहा हूँ, पैर के नीचे बालू है और सिर पर सूरज। परी मुझे मोह लेती है। मुझ पर उस परी का जादू छा जाता है जो सर्वथा कल्पनालोक की है। साथी मुझे जब यथार्थ सुना रहा था जिन्दगी का सत्य वह मुझे नहीं भाया और मेरी यात्रा भारी हो गई। इसके विपरीत उसने मुझे सर्वथा कल्पना की बातें सुनाई सब-कुछ असत्य वे मुझे ऐसी भाई कि मैं भूल गया कि भारी यात्रा कर रहा हूँ।

साथी की इस कथा में कला का मर्म निहित है। कथा कल्पित है, असत्य है। पर क्या वह कल्पित और असत्य में से जीवन का यथार्थ, जीवन का सत्य नहीं समेटे हुए है वही जो साथी ने सीधे-सीधे सुनाया था। परी कल्पित और असत्य हो जो कथा का मुख्य पात्र है पर गुरु और राजा तो यथार्थ और सत्य हैं। उनका चरित्र और आचरण। फिर परी भी कल्पना होते हुए कल्पना नहीं है, वह प्रतीक है मूल्य-दृष्टि का।

मूल्य-दृष्टि तटस्थ होकर केवल कला देती है। फिर वह कविता हो, चित्रकारी हो, शिल्प हो या संगीत। कभी मन्दिर इन कलाओं का संगम था। दृश्य देखिए मेरी कन्या मीरा की कविता गा रही है, कृष्ण मूर्ति के सामने और इससे प्रभावित हो मेरा पड़ोसी मन्दिर की भित्ति पर इस दृश्य का चित्र काढ़ता है उन श्रोताओं-सहित जो गीत से मन्त्रमुग्ध हैं।

और क्या बताऊँ मैं। मैं जब भी मन्दिर जाता हूँ, भित्ति पर मीरा के इस चित्र को देखकर मुझे प्रत्यक्ष में संगीत सुनाई देने लगता है। इसे देख-सुन मैं अपना दुख-दर्द भूल जाता हूँ।

मैं समझता हूँ, धर्म का भी यही मर्म है।

हम कहते हैं कला कल्पना है उसका रंग, रूप, शब्द, स्वर सभी कल्पना। कल्पना जिसे हम असत्य मानते हैं। और विकास के साथ यथार्थ और यथार्थ होते जा रहे हम कल्पना को बेमानी समझने लगे हैं, तभी तो कला से दूर-दूर होते जा रहे हैं।

माना कि कल्पना असत्य है, पर वह बेमानी नहीं है।

और कल्पना असत्य है तो किस कोटि की असत्य है इसका विचार यथार्थ और यथार्थ होते जा रहे मनुष्य ने कभी किया है? वह असत्य झूठ हो, किन्तु यथार्थ का उलटा असत्य नहीं है। कला जब चाँदनी को परी कहती है तो वह चाँदनी को झुठलाती नहीं, उस दशा में भी नहीं जब वह सीधे-सीधे कहती है यह चाँदनी नहीं परी है। यह असत्य तो चाँदनी के सत्य को और महिमामय बना देता है।

मुख चन्द्रमा है यह कितना आह्लाददायी असत्य है। और जो आह्लाददायी है, महिमामय है वह बेमानी कैसे हो सकता है! ऊपर दी गई परी-कथा बेमानी नहीं रह जाती, क्योंकि वह जिन्दगी की रुक्षता को स्निग्धता से भर देती है। सीधा यथार्थ तो रुक्षता को ओर रुक्ष कर देता है।

मैं रेगिस्तान में से चला जा रहा हूँ। संग चल रहा मेरा साथी मुझसे कहता है यही है जिन्दगी! चलते जाना-चलते जाना। रेगिस्तान में चल रहे हैं हम। नहीं जानते हम कहाँ जा रहे हैं अथवा जहाँ भी जा रहे हैं वहाँ पहुँचेंगे भी या नहीं। पहुँचें-न पहुँचें, हमें चलते जाना है। पैरों के नीचे बालू से जूझते और सिर के ऊपर सूरज को झेलते!

वह कहता ही जाता है, इस बालू पर क्या हमारा बस है! हमारा बस न बालू पर है, न सूरज पर जो हमको पूरी तरह जलाता है। कहीं विश्राम करें, ऐसा स्थल भी तो नहीं है। भाई, यही है जिन्दगी चलते जाना-चलते जाना। जलते जाना जलते जाना।

यह सत्य है, सूरज-जैसा सत्य। सूरज-जैसा जलता सत्य। और क्या यह सत्य जलते को और नहीं जलाता है? और फिर यह तटस्थ सत्य नहीं है। यह तटस्थ सत्य इसलिए नहीं है कि कोई बालू पर चल रहा है, कोई हरियाली पर चल रहा है, कोई फूलों पर चल रहा है। ऊपर तपता सूरज भी नहीं है। किसान बालू पर चलता है महाजन तो नहीं।

ऐसे अतटस्थ सत्य से तटस्थ असत्य भला। साथी की परीकथा असत्य है। बालू पर चल रहे के लिए, हरियाली पर चल रहे के लिए, फूलों पर चल रहे के लिए। तात्पर्य सभी के लिए।

इन्द्र, रति, बृहस्पति, कामदेव, अहल्या ये सभी तटस्थ असत्य हैं, सभी के लिए समान रूप से प्रिय-अप्रिय! समान रूप से जीवन का श्वेत-अश्वेत दिखानेवाले। स्वर्ग-नरक का संकेत देनेवाले जो अपने आप में कल्पना होते हुए अयथार्थ नहीं हैं तटस्थ यथार्थ हैं।

ऊपर की परी कथा कला की भूमिका का भी संकेत देती है। हम यदि कथा में परी के स्थान पर कला शब्द को रख दें तो कला का लक्ष्य आप हमारे सामने आ जाएगा।

आज के सन्दर्भ में कला का विचार करें तो कह सकते हैं कि उसका विज्ञान से संघर्ष नहीं है। विज्ञान कला की उपेक्षा करता हो, कला विज्ञान की उपेक्षा नहीं

करती, उलटे विज्ञान के अतटस्थ सत्य से दुनिया में दिनोंदित तीव्र से तीव्रतर होती जा रही विषमता से वह चिन्तित है और इससे कैसे उबरा जाए इसके प्रति जागरूक। यही कला की भूमिका है। कला की भूमिका धर्म अथवा राजनीति की भाँति किसी प्रतिबद्धता से जकड़ी नहीं होती, उसकी भूमिका तो संवेदन की है, चेतना की। तटस्थ संवेदन, तटस्थ चेतना की जो या तो प्रकृति की होती है या संत-चिंतकों की।

कला की यदि विज्ञान से लड़ाई है तो वह उसके अतटस्थ सत्य से। उसके सत्य मानव जाति के लिए नहीं होते, चुनिंदा मानवों के लिए होते हैं। कैसर का इलाज गरीब तक नहीं पहुँचा है, विमान अमीरों की चीज है, कम्प्यूटर-जैसे उपकरण चोर-डकैतों को अधिक लाभ पहुँचा रहे हैं। विकास की इस पीड़ा से आज की कला पीड़ित है। धर्म, कला, विज्ञानतीनों प्रकृति की ही देन हैं। पर आज स्थिति यह है कि धर्म गरीबों का, विज्ञान अमीरों का बना हुआ है और कला मात्र बुद्धिजीवियों की।

सत्याग्रह है साहित्य का स्वराज†

नन्दकिशोर आचार्य*

साहित्य में स्वराज और निःउपनिवेशीकरण की अवधारणाओं और प्रक्रियाओं के प्रतिबिम्बन का जायजा लेने से पूर्व यह देख लेना जरूरी है कि एक ज्ञान-प्रक्रिया के रूप में साहित्य की अपनी प्रक्रिया के स्वराज को हम किस प्रकार समझते हैं अर्थात् साहित्य की अपनी प्रक्रिया से प्रसूत मूल्य-दृष्टि क्या है। क्या उसकी अपनी भी कोई मूल्य-दृष्टि है अथवा वह किसी अन्य प्रक्रिया से बरामद मूल्य-दृष्टि के सम्प्रेषण का एक माध्यम मात्र है? यदि हम यह मान लेते हैं कि साहित्य स्वयं कोई वैध ज्ञान-प्रक्रिया नहीं है और अन्य प्रकार से बरामद ज्ञान को सम्प्रेष्य बनाने की विधि मात्र है तो यह एक प्रकार से उसकी अपनी वैधता या प्रामाणिकता को ही सन्देह के घेरे में लाना होगा। वह एक प्रामाणिक ज्ञान-प्रक्रिया तभी माना जा सकता है जब हम यह स्वीकार करें कि सच्चा साहित्य किसी दर्शन या विचारधारा का अनुयायी नहीं होताबल्कि वह स्वयं सत्य की तलाश की एक स्वायत्त प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में वह समाज में व्याप्त सभी प्रकार के विचारों और स्थितियों के साथ अन्तःक्रिया करता है और उसके प्रमाण आसानी से उसमें तलाश भी जा सकते हैं, लेकिन, देखना यह होगा कि एक ज्ञान-प्रक्रिया के रूप में साहित्य की अपनी प्रक्रिया भी क्या किसी सत्य या मूल्य-बोध का संकेत करती हैचाहे उसमें स्थूल स्तर पर व्यक्त विचार कुछ भिन्न संकेत भी कर सकते हों। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और शिक्षाविद इवान इलिच ने शिक्षा को ज्ञान की एक सम्प्रेषण-प्रक्रिया मानते हुए उसके दो प्रकार के एजेंडा का जिक्र किया है : एक वह जो घोषित एजेंडा है और दूसरा वह जो उसकी प्रक्रिया में ही अन्तर्निहित है यानी गुप्त एजेंडा और यह गुप्त एजेंडा ही वास्तविक एजेंडा होता है। यह बात ज्ञान की तलाश और सम्प्रेषण की सभी विधाओं पर लागू होती है।

इस दृष्टि से विचार करें तो पाते हैं कि साहित्य की अपनी एक नैतिक चेतना है जो उसकी अपनी रचना-प्रक्रिया से ही उपजती है और इसलिए वह कोई साहित्येतर या आरोपित नैतिकता नहीं है। साहित्य की यह अपनी नैतिक चेतना ही उसका स्वराज

* नन्दकिशोर आचार्य, सुथारों की बड़ी गुवाड़ बीकानेर-334005 दूरभाष : 0151-2201045

† साहित्य अकादमी द्वारा 'साहित्य और स्वराज' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत प्रपत्र।

है। इस तरह साहित्य एक गहरे और बुनियादी अर्थ में अपनी प्रक्रिया में ही एक नैतिक कर्म हो जाता है। इस नैतिकता की नींव साहित्य की बुनियादी प्रतिज्ञा है और वह है एक सृजनात्मक स्वतन्त्र चेतना द्वारा अन्य स्वतन्त्र चेतना के साथ एक सर्जनात्मक सम्बन्ध। लेखक और उसके गृहीता के बीच का रिश्ता भी एक सर्जनात्मक रिश्ता है क्योंकि गृहीता केवल ग्रहण नहीं करता, बल्कि ग्रहण करने की प्रक्रिया में रचता भी है या कह सकते हैं कि रचते हुए ग्रहण करता है। एक स्वतन्त्र नैतिक चेतना का दूसरी स्वतन्त्र नैतिक चेतना से सर्जनात्मक सम्बन्ध साहित्य की मूल नैतिक प्रतिज्ञा है। इसलिए साहित्य जब सत्ता के स्वरूप और प्रक्रिया पर भी विचार करता है तो उसमें वह स्वभावतः समाज के आपसी सम्बन्धों में सत्ता को पैदा करते और आधार देते हैं इस सर्जनात्मकता की प्रतिष्ठा ही चाहता है। स्वतन्त्रता, समानता और सर्जनात्मकता इसलिए किसी विचारधारा या अन्य ज्ञानानुशासन द्वारा उस पर आरोपित नहीं, बल्कि साहित्य की अपनी प्रक्रिया से प्रसूत मूल्य हैं और इसमें अनिवार्यतः अहिंसा भी अन्तर्निहित है, क्योंकि साहित्य के सम्प्रेषण-ग्रहण की प्रक्रिया सारतः अहिंसक प्रक्रिया है जो किसी तरह के बल प्रयोग के बजाय मानवीय संवेदन और विवेक पर भरोसा करती है। एक अच्छी कृति से साक्षात्कार की प्रक्रिया यदि हमारी चेतना में कुछ नया जोड़ती, उसे बदलती या उसका परिष्कार करती है तो यह दरअसल महात्मा गाँधी के 'हृदय परिवर्तन' की अवधारणा का कलात्मक रूपायन ही है। साहित्य की ताकत में यकीन करना, वस्तुतः अहिंसा की ताकत में यकीन करना है।

इस प्रकार समाज के आपसी सम्बन्धों में सर्जनात्मकता या अहिंसा की प्रतिष्ठा और वही तो वास्तविक स्वराज या निःउपनिवेशन है ही साहित्य का नैतिक कर्म है, जो वह अपने होने के माध्यम से ही करता है। इसलिए साहित्य से उन शक्तियों या प्रवृत्तियों की पहचान की उम्मीद करना गलत नहीं होगा, जो अपनी स्थूल या सूक्ष्म हिंसा से समाज के बीच सर्जनात्मक सम्बन्धों को विकृत करती या स्वतन्त्रता का दमन करती हैं। नैतिकता और कला की प्रक्रियाओं पर विचार करते हुए प्रसिद्ध सौन्दर्यशास्त्री हिरयन्ना कहते हैं कि दोनों ही वस्तुओं की वर्तमान अवस्था के प्रति अपूर्णता के बोध से पैदा होती हैं और साथ ही यह प्रस्ताव भी करते हैं कि दोनों अपने साध्य को तभी प्राप्त कर पाती हैं, जब वे आनन्दमूलक और निर्वैयक्तिक हों। उन्हीं के शब्दों में, "अगर हम किसी साध्य के लिए काम कर रहे हैं तो हमारा कर्म नैतिक तब होता है, जब वह साध्य पूरी तरह से स्वार्थपरक उपलब्धि को त्याग कर अर्जित किया जा रहा हो। ठीक इसी तरह अगर हम किसी स्थिति का अनुचिन्तन करते हैं तो यह अनुचिन्तन सौन्दर्यात्मक तब बनता है, जब हम उसके द्वारा इतने वशीभूत हो जाते हैं कि स्वयं अपने आप को भूल जाते हैं कला और नैतिकता, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, जीवन की आलोचना करती हैं, लेकिन यह आलोचना ऐसी नहीं होती,

जो जीवन की सम्पूर्ण सक्रियताओं का परित्याग करने की दिशा में हमें ले जाए। उनका लक्ष्य तो उन समस्त सक्रियताओं में अन्तर्निहित इच्छाओं और वृत्तियों का शुद्धीकरण करना होता है और ऐसा वे स्वार्थपरता के सारे धब्बों को धोकर करती हैं।"

ऐसा करने में ही कला अथवा साहित्य और सत्याग्रह एक-सरीखे हो जाते हैं। दरअसल, गहराई से देखें तो साहित्य-दृष्टि और सत्याग्रह-दृष्टि में एक अद्भुत साम्य है और यह साम्य गाँधी विचार के किसी प्रभाव की वजह से नहीं, बल्कि दोनों की अपनी प्रक्रियाओं से प्रसूत है क्योंकि दोनों की प्रक्रिया कई बातों में समान हैं। सत्याग्रह को सामान्यतः हृदय परिवर्तन के एक उपाय के बतौर समझा जाता है और इसका साधन विचार के स्तर पर समझाने के साथ-साथ स्वैच्छिक कष्ट-सहन द्वारा नैतिक संवेदन को जाग्रत करना है। यह नैतिक संवेदन ही हमें अन्याय के प्रतिरोध और पीड़ित के साथ के लिए प्रेरित और सक्रिय करता है। साहित्य की प्रक्रिया भी कमोवेश यही है। जब यह कहा जाता है कि किसी उत्कृष्ट साहित्यिक कृति को पढ़कर हम ठीक वही नहीं रह जाते, जो उसे पढ़ने से पहले थे तो क्या यह इस बात का स्वीकार नहीं है कि साहित्य हमारे मन को बदलता है, हमारे संवेदन का संस्कार करता है और स्पष्ट है कि इसका तात्पर्य हमारे नैतिक बोध का जाग्रत होना अर्थात् हमारा अपने स्वराज में प्रतिष्ठित होना है।

यह भी स्पष्ट है कि इस कार्य में साहित्य कष्ट-सहन की प्रक्रिया को भी अपना माध्यम बनाता है। जब हम किसी कृति में किसी निर्दोष या नेक चरित्र को किसी अत्याचार, उत्पीड़न या परिस्थिति के दबाव तले कुचला जाता हुआ देखते हैं तो हमारे मन में न केवल निर्दोष या नेक के प्रति करुणा का भाव पैदा होता है, बल्कि उस परिस्थिति को बदलने की जरूरत स्वतः ही अनुभव होने लगती है। त्रासदी की तो विशेषता ही इस बात में है कि वह नायिका-नायक या किसी नेक चरित्र को न केवल कष्ट-सहन की प्रक्रिया से गुजारती है, बल्कि अन्त में भी उसे विफल या मृत्यु के मुख में जाते हुए दिखाने के बावजूद अपने पाठक के मन में हताशा का भाव पैदा करने के बजाय अन्याय या पाप के विरुद्ध संघर्ष के भाव को सक्रिय करती है। ईसा या गाँधी की शहादत का जो प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है, कुछ उसी तरह का प्रभाव सीता, द्रौपदी या अन्ना कैरेनिना जैसे चरित्रों के साथ घटित त्रासद स्थितियों के वर्णन का भी पड़ता है। अरस्तू का तो मन्तव्य ही यही है कि त्रासदी हमारा कैथार्सिस करती है यानी हमारे भावों को शुद्ध करती है। यह प्रकारान्तर से नैतिक संवेदन की जागृति ही तो है। भारतीय साहित्य-चिन्तन में जब साहित्य का प्रयोजन रसानुभूति के साथ-साथ 'शिवेतरक्षतये' भी बताया गया तो उसमें भी इस बात का स्वीकार अन्तर्निहित है कि साहित्य की प्रक्रिया अशिव अर्थात् अनैतिक के क्षय और नैतिक संवेदन के उदय की प्रक्रिया है। इस अर्थ में रसानुभूति में भी एक नैतिक अनुभूति समाविष्ट है, क्योंकि अन्य के आत्म में रूपान्तरित हुए बिना किसी भी प्रकार की अनुभूति सम्भव ही नहीं

हैसाहित्य की प्रक्रिया विषय को विषयी में ढालने की प्रक्रिया है और सम्पूर्ण नैतिकता का मूल स्रोत अन्य का आत्मवत् हो जाना है और यही बोध भारतीय काव्य के रसराज 'करुण' का भी मूल स्रोत है।

जिस प्रकार साहित्य में अन्य आत्मवत् हो जाता है, उसी प्रकार सत्याग्रह-दृष्टि भी किसी को अन्य नहीं मानती। सत्याग्रही अन्याय का प्रतिरोध करने की प्रक्रिया को भी प्रेम या अहिंसा की प्रक्रिया मानता है क्योंकि यह प्रेम ही है जो अन्य के आत्म होने की अनुभूति का व्यावहारिक रूप है। उत्कृष्ट साहित्य जिस प्रकार बुरे से बुरे चरित्र के कल्याण की नैतिक सहानुभूति का बोध अंकुरित करता है, उसी प्रकार सत्याग्रह-दृष्टि भी न केवल अपनी प्रक्रिया में प्रतिपक्ष के प्रति पूरी सहानुभूति रखती है, बल्कि आत्म-कष्ट द्वारा उसके मनुष्यत्व को जगाना चाहती है उसे व्यक्ति रूप में नष्ट करना नहीं क्योंकि वस्तुतः, वह अन्य नहीं आत्म ही है और उसे नष्ट करने का तात्पर्य एक तरह से नैतिक आत्महत्या है क्योंकि ऐसा करना उस प्रेम की हत्या है, जो सत्याग्रह का संवेदनात्मक नैतिक आधार है।

इसलिए यदि सत्याग्रही की भाषा में कहें तो साहित्य एक संवेदनात्मक सत्याग्रह है। इसी तरह साहित्य की भाषा में कहें तो सत्याग्रह एक किस्म की सौन्दर्यानुभूति का सक्रिय रूपायन है। सत्याग्रह इसलिए प्रतिरोध का एक प्रकार होने के साथ-साथ प्रेमानुभूति की, रसानुभूति की भी प्रक्रिया है और यह इस प्रक्रिया की अपनी विशिष्टता है, क्योंकि अन्य किस्म के प्रतिरोध में प्रतिपक्षी सदैव अन्य ही रहता है, वह आत्म में रूपान्तरित नहीं होता। ऐसा लगता है कि सत्याग्रही की प्रतिरोध की चेतना और प्रक्रिया मानो साहित्य की रचना-प्रक्रिया और सम्प्रेषण प्रक्रिया अर्थात् साहित्य-दृष्टि से प्रेरित एवं संस्कारित है और इसी तरह साहित्य की प्रक्रिया मानो सत्याग्रह-दृष्टि का सौन्दर्यात्मक रूपायन है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि कोई कृति अपने सन्देश में हमें प्रेम या अहिंसा से भिन्न दिशा में संकेत करती लगे तो ऐसा भी वह हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया के माध्यम से ही करती है, जिसका निहितार्थ यही है कि इलिच की पदावली में, उसका गुप्त सन्देश अहिंसा या हृदय परिवर्तन ही है क्योंकि इतर तरीकों को स्वीकार्य बनाने के लिए भी वहाँ अहिंसक प्रक्रिया का ही सहारा लिया जा रहा है। ऐसा करना स्वयमेव अहिंसा की वरेण्यता को स्वीकार और इस प्रकार घोषित सन्देश का अतिक्रमण करते हुए वास्तविक सन्देश को बरामद करना है। इसलिए क्या यह कहना गलत होगा कि साहित्य मात्र की प्रक्रिया सत्याग्रह की प्रक्रिया अर्थात् अन्याय के प्रतिरोध की चेतना का ही साहित्यिक रूपायन है। स्वराज दरअसल एक प्रेमानुभूति है, जिसमें किसी तरह के उपनिवेशन या अन्याय की कोई गुंजाइश ही नहीं है, बल्कि यह अन्य के प्रति उत्तरदायित्व का बोध है, जिसका तात्पर्य है अन्य में निहित स्व की तलाश। सत्याग्रह अन्यत्व को भेदकर आत्म का अन्वेषण और बोध है कि अन्य में आत्मानुभूति

की प्रक्रिया। इसलिए साहित्य के लिए स्वराज का तात्पर्य है, अपनी स्वायत्त प्रक्रिया से प्रसूत सत्याग्रह-दृष्टि की प्रतिष्ठा और इसके लिए जरूरी है अपने को विभिन्न दर्शन-प्रणालियों और विचारधाराओं का उपनिवेश बना लेने के बजाय अपनी इस सत्याग्रह-दृष्टि को केवल एक कलागत अनुभव की तरह नहीं, बल्कि जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करना। यहाँ यह स्मरण करना अस्थाने नहीं होगा कि जिसे हम आधुनिक साहित्य कहते हैं, वह प्रकारान्तर से आधुनिकतावादी सभ्यता के परिणामों से असन्तोष और वितृष्णा का भाव पैदा करता और इस प्रकार उसके बरक्स एक संवेदनात्मक सत्याग्रह की प्रक्रिया बन जाता है। यह सत्याग्रह स्थूल रूप से विषय-वस्तु के रूप में भी प्रकट होता है, पर सूक्ष्म और रूपगत स्तरों पर साहित्य अपने होने की प्रक्रिया में ही सत्याग्रह हो जाता है और उसका प्रभाव अधिक गहरा और व्यापक भी होता है। विक्टर सर्जी का कहना है कि एक प्रेम कविता भी आतंक के विरुद्ध एक सार्थक हथियार होती है हम केवल यहाँ 'हथियार' के बजाय 'सत्याग्रह' पद रखना चाहेंगे। इसलिए सवाल साहित्य में व्यक्त विषय का नहीं, बल्कि उस प्रक्रिया का है, जिसमें सौन्दर्य और नैतिकता अभिन्न हो जाते हैं, जैसे सत्याग्रह में प्रेम और प्रतिरोध। सत्याग्रही प्रतिपक्ष के लिए भी एक नैतिक दायित्व महसूस करता है, क्योंकि वह अपना ही एक रूप है। सत्याग्रह की तरह साहित्य भी अन्यत्व का निषेध है। वही उसके स्वराज का मूल है।

ईसाई-दलित और अछूत भी*

रामबहादुर राय*

दलित ईसाइयों के मामले पर मनमोहन सिंह की सरकार अपने बनाए मकड़जाल में बुरी तरह उलझती जा रही है। हर मौके पर उसके रवैये से साफ हो गया है कि वह इससे बचने के जुगाड़ में लगी हुई है। इसीलिए वक्त काटने का कोई न कोई वह बहाना ढूँढ़ लेती है। ताजा उदाहरण सुप्रीम कोर्ट का है। 23 जनवरी को सुप्रीम कोर्ट में सरकार के वकील गोपाल सुब्रह्मण्यम ने अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग की वह सिफारिश पेश की जिसमें रंगनाथ मिश्र आयोग पर उसकी सम्मति थी। इस पर भारत सरकार को अपना फैसला करने के लिए वक्त चाहिए, यह अनुरोध भी वकील ने हाथों-हाथ अदालत में रखा। इस तरह मुख्य न्यायाधीश केजी बालाकृष्णन, न्यायमूर्ति आरवी रवीन्द्रन और जेएम पंचाल की पीठ ने भारत सरकार को आठ हफ्ते का वक्त देना मंजूर कर लिया। यह मामला सुप्रीम कोर्ट के सामने चार साल पहले एक जनहित याचिका के जरिए आया था। सरकार जब फैसले नहीं कर पाती तो उसे मजबूर करने का यह तरीका बन गया है।

मसला यह है कि क्या दलित ईसाइयों को भी अनुसूचित जाति का माना जाए या नहीं। अब तक संविधान में उन्हें ही अनुसूचित जाति का माना जाता है जो हिन्दू समाज के अंग हैं। आजादी से पहले अनुसूचित जाति की एक परिभाषा तय हो गई थी। उसके लिए एक सिद्धान्त बना था। आजादी के बाद भी उसमें कोई बदलाव नहीं हुआ है। लेकिन दलित ईसाइयों ने अपना प्रयास नहीं छोड़ा है। वे इस माँग को लगातार उठाते रहे हैं। जनहित याचिका उसी कड़ी में है। नेशनल काउंसिल ऑफ दलित क्रिश्चियंस वह संस्था है जो इसे अंजाम दे रही है। इसके समन्वयक टी फ्रेंकलिन सीजर थामस इसी काम में दिन-रात एक कर रहे हैं। उनके लिए यह धर्म का सवाल नहीं है। लेकिन यह लड़ाई कैथोलिक बिशप कान्फ्रेंस की ओर से लड़ी जा रही है। कान्फ्रेंस ने अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग के लिए एक कमीशन बनाया हुआ है। उसके कार्यकारी सचिव कोसमन आरोकिया राज का कहना है कि यह हमारे लिए धार्मिक नहीं, मानवाधिकार का मुद्दा है।

* लेखक वरिष्ठ पत्रकार तथा 'प्रथम प्रवक्ता' पाक्षिक के सम्पादक हैं।

† प्रथम प्रवक्ता मार्च-अप्रैल 2008 के अंको से साभार

इनका यह दावा है कि दलित ईसाइयों की यह माँग काफी पुरानी है। कम से कम 58 साल पुरानी। इस हिसाब से जिस दिन संविधान लागू हुआ उसी दिन से दलित ईसाई अपने अधिकार की आवाज उठा रहे हैं। संविधान की एक व्यवस्था के तहत 1950 में राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया। उस आदेश के तीसरे पैरे से यह तय होता है कि अनुसूचित जाति में कौन रहेंगे और कौन नहीं रहेंगे। वह पैरा स्पष्ट करता है कि हिन्दू समाज के वंचित समुदाय को ही अनुसूचित जाति में माना जाएगा। इसी पर दलित ईसाइयों का विरोध है। वे इसे अपने अधिकार पर हमला मानते हैं। हालाँकि इसका ऐतिहासिक तथ्यों से कोई लेना-देना नहीं है। राष्ट्रपति के उस आदेश को तभी बदला जा सकता है जब संविधान में संशोधन कर दिया जाए। अनुसूचित जाति के लोगों को जो आरक्षण मिलता है वह इसी आदेश के तहत होता है। संविधान सभा ने पुराने सिलसिले को काफी गौर करने के बाद जारी रखा। यह आरक्षण की व्यवस्था इसलिए की गई थी कि जाति आधारित हिन्दू समाज के पलड़े को बराबर किया जा सके। तभी समतामूलक समाज बनाया जा सकेगा।

अब आरक्षण वह पंजीरी बन गई है जिसे हर कोई पाना चाहता है। इसी लालसा का परिणाम है कि दलित ईसाइयों ने अपना भी दावा बना दिया है। उनके दावे का वही आधार है जो अनुसूचित जाति के निर्धारण में माना गया है। सदियों से जिन्हें छुआछूत का शिकार होना पड़ा और जो ब्राह्मणों की व्यवस्था में न केवल निचले पायदान पर थे, बल्कि हर तरह के अधिकारों से वंचित थे, उन्हें अनुसूचित जाति में रखा गया। हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था के आधार पर यह निर्णय हुआ था। इसकी तुलना दलित ईसाइयों के साथ बेमेल है। यह नजरिया उनका है जो शास्त्रीय आधार पर इसका विवेचन करते हैं। दलित ईसाइयों का दावा यह है कि जिस तरह हिन्दू समाज में जाति-व्यवस्था है और उसके आधार पर जातिगत भेदभाव है, उसी तरह उनके साथ भी चर्च में भेदभाव किया जाता है।

गोल डाकखाने के पास जहाँ कैथोलिक बिशप कान्फ्रेंस का दफ्तर है उससे थोड़ी दूर पर कोलंबस स्कूल चल रहा है। इसमें दाखिले के लिए अमीर परिवारों में काफी मारामारी रहती है। इसकी ओर इशारा करते हुए डॉ. कोसमन आरोकिया राज पूछते हैं कि क्या इसमें दलित ईसाइयों के बच्चे दाखिल हो सकते हैं। उनका अपना अनुभव कम कटु नहीं है। उन्होंने कहा कि 1990 में जब मैं पुजारी हुआ और इस नाते गाँवों में जाने लगा तो देखा और पाया कि हिन्दू और दलित ईसाइयों में ज्यादा फर्क नहीं है। क्या अब भी छुआछूत की कुप्रथा जारी है? इसका वे संतोषजनक जवाब नहीं दे पाते। यह उन लोगों के लिए विडम्बना ही है कि वे जिसे चुनौती दे रहे हैं और जिसको अन्याय का प्रतीक मान रहे हैं उसका निर्णय अंग्रेजी सरकार के जमाने में हुआ था। सबसे पहले 1880 में यह प्रश्न पैदा हुआ कि हिन्दू समाज के उस वर्ग को

किस श्रेणी में रखा जाए जो छुआछूत का मारा हुआ है। डेजिल इबटन ने एक आधार निर्धारित किया। उससे ही अनुसूचित जाति का निर्धारण होता है। तब उन्होंने इस समूह को 'डिप्रेस्ड क्लास' की श्रेणी में रखा था। वह पहली जनगणना थी। उससे जो सिलसिला निकला वह दूसरी जनगणना में अधिक परिष्कृत हुआ। 1931 में जेएस हट्टन ने 'डिप्रेस्ड क्लास' को जिस तरह से चिह्न किया उसी ने एक पैमाना बना दिया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के एतराज के बाद 'डिप्रेस्ड क्लास' का नया नामकरण हुआ। वही अनुसूचित जाति कहलाया। 1936 का कानून यह तय करता है कि अनुसूचित जाति समूह में कौन-कौन जातियाँ और उपजातियाँ मानी जाएँगी। उसी कानून में यह स्पष्ट किया गया था कि कोई ईसाई अनुसूचित जाति में नहीं माना जाएगा। संविधान सभा ने अपनी बहस में इस पर मोहर लगाई। इसके हर पहलू पर विचार हुआ। निष्कर्ष यह निकाला गया कि यह व्यवस्था हिन्दू समाज में सुधार और सन्तुलन के लक्ष्य से प्रेरित है। इसका सम्बन्ध दूसरे अन्य धार्मिक समूहों से नहीं है। जिसे सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा माना गया और पहचान के लिए हिन्दू समाज को ध्यान में रखा गया उसे आज सेकुलर कसौटी पर चुनौती दी जा रही है। तर्क यह है कि धर्म के आधार पर एक ही प्रकार के समुदाय के विभिन्न धर्मावलंबियों से भेदभाव अनुचित है। यानी धार्मिक आधार पर पक्षपात किया जा रहा है।

धार्मिक आधार पर पक्षपात को चुनौती देने वाली एक याचिका 1983 में सुप्रीम कोर्ट में दायर हुई। इसे सुसाई नाम के एक आदमी ने दायर किया। चेन्नई में एक पटरी पर वह मोची का काम करता था। जब उसे मालूम हुआ कि सरकारी आदेश से एक विभाग अनुसूचित जाति के लोगों को पटरी पर जगह आवंटित कर रहा है तो उसने भी दरखास्त दी। उसे इस आधार पर छोट दिया गया कि वह अनुसूचित जाति का न होकर दलित ईसाई है। इस पर उसने अदालत की शरण ली। सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई की और अपना फैसला सुनाया कि 'धर्मांतरण के बाद वही जाति बनी रहती है इसका पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है।' साफ है कि सुसाई यह साबित नहीं कर सका कि ईसाई हो जाने के बाद उसकी जाति नहीं बदली।

दलित ईसाई के मामले में इस मुकदमे का अक्सर हवाला दिया जाता है। इसी तरह यह भी एक तथ्य है कि अंग्रेजों ने भी धर्मांतरित लोगों को अनुसूचित जाति का नहीं माना। सवाल यह है और ऐसे अनेक सवाल हैं कि आजादी के बाद केन्द्र में जितनी सरकारें आईं उन्हें इस एक नुक्ते पर क्या सेकुलर नहीं माना जा सकता। अगर यही पैमाना हो तो जवाहर लाल नेहरू से राजीव गाँधी तक सब सेकुलर नहीं माने जाएँगे। अपवादस्वरूप जिनका नाम उभरेगा वे पीवी नरसिंहराव होंगे। उनके ही जमाने में सीताराम केसरी की पहल पर एक विधेयक बना था जिसमें दलित ईसाइयों को अनुसूचित जाति का दर्जा देने की बात थी। उस विधेयक के ढेर सारे किस्से हैं कि

वह कैसे बना और किस तरह लोकसभा में पेश नहीं किया जा सका। उसे अध्यादेश के रूप में जारी कराने की कोशिश हुई। दलित ईसाइयों के नेताओं की नजर में उस विधेयक की दुर्गति के लिए तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल कसूरवार हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उनके शांति अन्दाज ने बेड़ा गर्क करा दिया। जब अध्यादेश बनकर वह राष्ट्रपति भवन पहुँचा तो डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने उसे यह कहकर लौटा दिया कि चुनाव की रणभेरी बज चुकी है। अस्तु, अब कुछ नहीं हो सकता।

दलित ईसाइयों का भरोसा बना रहे इसलिए कांग्रेस ने 1996 के अपने घोषणा-पत्र में इसे शामिल किया। क्या उन्हें अपनी ओर खींचने के लिए तब की लड़खड़ाती कांग्रेस ने चारा डाला था? जो भी हो, यह साफ है कि तब सरकार से दलित ईसाइयों को काफी निराशा हुई। वे उम्मीद बाँधे हुए थे। पहली बार उन्हें तब निराशा हुई जब रामविलास पासवान ने समाज कल्याण मन्त्री के नाते संविधान में संशोधन पेश कर बौद्ध दलितों को अनुसूचित जाति में शामिल करवाया था। 1990 में विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार सामाजिक अन्याय निवारण के कदम उठा रही थी। उसी कड़ी में वह संविधान संशोधन था। उस समय भी दलित ईसाइयों को आश्वासन दिए गए थे कि उन्हें भी वह दर्जा साथ ही साथ दे दिया जाएगा।

आखिर क्यों केन्द्र की इन दो सरकारों को अपने कदम रोकने पड़े? यही वह पहली है जिसे समझे बगैर दलित ईसाइयों के मसले को हल नहीं किया जा सकता। अलबत्ता, यह कहा जा सकता है कि उन सरकारों के आश्वासन से इस माँग को बल मिला। अनेक मंचों से आवाज उठाने की कोशिश चल पड़ी। एक अभियान बन गया। उसका रूप रंग बदलता रहा। कभी निजी विधेयक के रूप में उसे लोकसभा में पेश किया गया; और जैसा होता है कि निजी विधेयकों पर हर शुक्रवार को दोपहर बाद चर्चा होती है, वैसा ही दलित ईसाई को अनुसूचित जाति का दर्जा दिलाने के विधेयक पर भी हुआ। कम ही होता है कि कोई निजी विधेयक पारित हो जाए और वह कानून का रूप ले सके। ऐसा ही इसके साथ भी हुआ। जब सदन में बात नहीं बनी तो अनुसूचित जाति/जनजाति संसदीय फोरम से प्रस्ताव पारित कराया गया। अनेक राज्यों की सरकारों ने वोट राजनीति के कारण इस तरह के अभियान को मदद दी। जब यह मामला सुप्रीम कोर्ट में आया तो मनमोहन सिंह की सरकार ने इसे रंगनाथ मिश्र आयोग को सौंप दिया।

खेल पुराना तरकीब नई

चर्च संगठनों का यह मजहबी अभियान है। इसका बाना राजनीतिक है। मानवाधिकार

की ओट में दलित ईसाइयों का मसला उठाया जा रहा है। खेल पुराना है, तरकीब नई है। एक तरफ अपने हक का दावा है तो दूसरी तरफ निशाने पर हैं अनुसूचित जाति के लोग, क्योंकि उनके ही हिस्से में से आरक्षण की माँग की जा रही है। अनुसूचित जाति को आरक्षण की विशेष सुविधा इसलिए दी गई कि वे छुआछूत के शिकार थे, इसलिए पिछड़ गए थे। उन्हें बराबरी पर लाने के लिए राष्ट्रपति ने एक आदेश 1950 में जारी किया, जिसके तीसरे पैरे में यह साफ किया गया था कि यह सुविधा हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए दी गई है। यह भी कि इसके हकदार गैर हिन्दू लोग नहीं होंगे। यह निर्णय संविधान सभा का था जो लम्बी बहस से निकला था। संविधान सभा के ईसाई सदस्यों ने बहस के दौरान दलित ईसाइयों के लिए ऐसी सुविधा दिए जाने की माँग रखी थी जिसे अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि वह तर्कसम्मत नहीं थी।

जिस तरह संविधान सभा के ईसाई सदस्यों ने यह माँग उठाई थी उसी तरह बाहर से नेशनल क्रिश्चियन काउंसिल ने इसे उठाया। काउंसिल के सचिव डॉ. ई. सी. भाट्टी ने लिखा कि अनुसूचित जाति के लोगों को जो सुविधा दी जा रही है वही दलित ईसाइयों को मिलनी चाहिए। उन्होंने चेतावनी के शब्दों का प्रयोग किया कि ऐसा न होने पर सामाजिक जलन पैदा होगी। उस समय दलित ईसाइयों का मुद्दा चर्च के लिए धार्मिक सवाल था। जब राष्ट्रपति का आदेश निकला तो नागपुर की कैथोलिक कमेटी के अध्यक्ष ने जवाहरलाल नेहरू को लिखा कि दलित ईसाइयों को भी अनुसूचित जाति का माना जाए। ऐसा न होने पर यह धार्मिक भेदभाव होगा। संविधान सभा के उपाध्यक्ष डॉ. एच.सी. मुखर्जी और फादर जे. डिसूजा ने राष्ट्रपति को इस बाबत एक ज्ञापन सौंपा। वे संविधान सभा में ईसाइयों के प्रतिनिधि थे।

साफ है कि दलित ईसाइयों का मसला आजादी के बाद से ही एक राजनीतिक सवाल बना हुआ है। चर्च संगठनों ने इसे एक मुद्दा बना रखा है जिसके लिए अभियान कभी तेज होता है तो कभी मंद, लेकिन वह चलता रहता है। संविधान सभा में ईसाइयों के प्रतिनिधियों ने पूरी कोशिश की, पर वे दलित ईसाइयों को अनुसूचित जाति की परिभाषा में शामिल नहीं करा सके। उनके प्रयासों का एक परिणाम निकला कि जवाहरलाल नेहरू ने हस्तक्षेप कर संविधान का पहला संशोधन कराया जिससे शैक्षिक और सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर दलित ईसाइयों को राज्यों में आरक्षण की सुविधा पाने का रास्ता खुल गया। इस प्रकार जवाहरलाल नेहरू ने भी माना कि अनुसूचित जाति की सुविधा एक राजनीतिक अधिकार है जिसके हकदार हिन्दू समाज के वे लोग हैं जो अछूत माने जाते थे।

इस बात को दलित ईसाई और चर्च संगठन कभी याद नहीं करते, लेकिन यह ऐसा तथ्य है जो हमेशा याद रखने लायक है। उन्हीं दिनों तत्कालीन मद्रास सरकार ने एक आदेश निकाला कि अगर दलित ईसाई हिन्दू हो जाते हैं तो उन्हें अनुसूचित जाति

की सुविधाएँ अपने आप मिलेंगी। इस आदेश का सामाजिक परिणाम क्या निकला, इसे कभी अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया। पूरी समस्या का यह ऐसा निचोड़ है जिसकी उपेक्षा कर दी जाती है। यह सही है कि समाज की धारा को पलटना आसान नहीं होता। इतना ही यह भी सही है कि सच्चाई को हमेशा के लिए अँधेरे में नहीं रखा जा सकता है। अनुसूचित जाति बनाम दलित ईसाई का मामला कुछ इसी तरह का है। जब-जब उनके सामने यह सवाल आया अपने दायरे में अदालतों ने राष्ट्रपति के आदेश के तीसरे पैरे को उचित ठहराया और इस आधार पर तमाम याचिकाओं को खारिज कर दिया। यही रवैया सुप्रीम कोर्ट का भी रहा है। यानी उसने भी अनुसूचित जाति के आधार को सही ठहराया है।

जहाँ तक शैक्षिक-सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण पाने का अधिकार है वह दलित ईसाइयों को शुरू से ही प्राप्त है। राज्यों के विभिन्न आयोगों ने उन्हें यह सुविधा दिलाई है। मण्डल आयोग ने अपनी रिपोर्ट में धार्मिक आधार पर पिछड़ेपन को मान्यता दी और अल्पसंख्यकों के उन समूहों को पिछड़ों की सूची में डलवाया जिन्हें गैर बराबरी की मार झेलनी पड़ रही थी। उस आयोग की सिफारिश पर एक सूची बनी। उसमें फेर-बदल होता रहता है। आरक्षण पाने की होड़ लगी हुई है। मण्डल आयोग की सिफारिशों से दलित ईसाइयों को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था। उन्हें पिछड़े के कोटे से आरक्षण मिल रहा है।

फिर भी चर्च संगठनों का अभियान जारी है तो इसके कारणों को समझने की जरूरत है। सतही तौर पर एक कारण यह दिखता है कि 1956 में संविधान संशोधन कर दलित सिक्खों को अनुसूचित जाति में शामिल किया गया। इसी तरह 1990 में नवबौद्धों को भी अनुसूचित जाति का दर्जा देने के लिए संविधान संशोधन हुआ। उस समय 8 मई 1990 को संविधान संशोधन पर बहस के दौरान श्रम और समाज कल्याण मन्त्री रामविलास पासवान ने आश्वासन दिया कि दलित ईसाइयों के लिए वे एक विधेयक जल्दी ही लाएँगे। इन उदाहरणों से दलित ईसाइयों को अभियान तेज करने का अवसर मिला। लेकिन वे यह भी जानते हैं कि जो काम इन्दिरा गाँधी नहीं कर सकीं, जिसे विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार पूरा नहीं कर पाई और पी.वी. नरसिंह राव भी अपने वादे को निभा नहीं सके, उसे मनमोहन सिंह की सरकार क्या पूरा कर पाएगी?

जो सतह पर दिखता है वह आधा सच है। चर्च संगठनों का अभियान आरक्षण के अधिकार तक सीमित नहीं है। उनके लिए यह एक जरिया है। धर्मांतरण उनका मूल लक्ष्य है। इस अभियान के एक सूत्रधार टी. फ्रेंकलिन सीजर बातचीत में यह स्वीकार करते हैं कि ईसाइयों की आबादी में एक करोड़ सत्तर लाख दलित हैं। अनुसूचित जाति की सुविधाओं को पाने के लिए करीब 50 लाख लोग फिर से हिन्दू

हो गए हैं। चर्च संगठनों की परेशानी इस वजह से बढ़ी हुई है। इसलिए उनका अभियान अस्तित्व रक्षा का प्रश्न बन गया है। उन्हें कुछ सफलता भी मिली है। केरल, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, गुजरात और कर्नाटक में आरक्षण पाने में वे सफल रहे। लेकिन भारत सरकार के सामने चर्च संगठन लाचार हो जाते रहे हैं।

लम्बे अनुभव से गुजरने के बाद चर्च संगठनों ने अपना रास्ता बदला। उन्हें सोच-विचार की जरूरत महसूस हुई। इसके लिए 1975 में मद्रास को चर्च संगठनों ने चुना। वहाँ चर्च संगठनों ने पाया कि समस्या जितनी बाहरी है उससे ज्यादा अंदरूनी है। इसका सम्बन्ध ईसाइयत के प्रसार के ऐतिहासिक क्रम से है। केरल में ईसायत को सबसे पहले ब्राह्मणों ने अपनाया। इसका असर चर्च की व्यवस्थाओं पर पड़ना ही था। जब दूसरी और दलित जातियों के लोग ईसाई बने तो उनके साथ वैसा ही बरताव वहाँ हुआ जैसा हिन्दू समाज में होता था। यहीं भारत की ईसाइयत की पोल खुल जाती है। जैसे तो यह माना जाता है कि ईसाई धर्म में जाति को मान्यता नहीं है, लेकिन व्यवहार में वह प्रथा बनी हुई है। कैथोलिक चर्च को एक रास्ता राबर्ट डी नोबिली ने दिखाया। सतरहवीं सदी में वे मदुराई मिशन के प्रमुख थे। रोम के उस पादरी ने ईसाइयत के प्रसार के लिए हिन्दू तौर-तरीके अपनाए। उनके चर्च को कैथोलिक आश्रम कहा जाता था। तब चर्च व्यवस्था में इस पर सवाल इसलिए नहीं खड़े किए गए क्योंकि उससे ईसाइयत के प्रसार में मदद मिल रही थी। अब उस पर अवश्य सवाल खड़ा हो रहा है। इसका एक कारण तो चर्च संगठनों के सामने उपस्थित समस्याएँ हैं। वे एक अन्धे मोड़ पर पहुँच गए हैं, जहाँ से उनको रास्ता नहीं सूझ रहा है। मद्रास का वह चर्च जमावड़ा इस मायने में महत्वपूर्ण था कि वहाँ से कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट में एकजुटता बनी। चर्च में संख्या का प्रभाव भी दिखाई पड़ा। उनमें दलितों की संख्या ज्यादा है। इसका ही तकाजा था कि चर्च ने दलित धर्मशास्त्र की ओर ध्यान देने का फैसला किया।

इन्दिरा गाँधी 1980 में दोबारा सत्ता में आई। अल्पसंख्यक इस भाव से भरे हुए थे कि उनकी मदद से ही वे सत्ता में वापस लौट सकीं। इन्हीं सम्बन्धों के बल पर जब दलित ईसाइयों ने उन्हें ज्ञापन दिया और माँग की कि उन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा दिया जाए, तो उनका आश्वासन गजब का था। उन्होंने उस प्रतिनिधिमण्डल से कहा, “मेरी आपकी माँगों से पूरी सहानुभूति है। मैं इसे पार्टी के सामने रखूँगी। कांग्रेस पार्टी ही इसके संवैधानिक पहलुओं की छानबीन कर फैसला लेने में समर्थ है।” वही वह समय है जब इन्दिरा गाँधी की मर्जी से कांग्रेस चलती थी और सरकार भी। फिर भी वे दलित ईसाइयों को कोरा आश्वासन दे रही थीं तो यह समझ लेना चाहिए कि उन्हें इस माँग के दूरगामी दुष्परिणामों का अनुमान रहा होगा। उन्हीं दिनों ईसाइयत में दलित आन्दोलन की धारा प्रबल होती जा रही थी। देश-विदेश के चर्च संगठनों से पैसे प्राप्त कर नए तरह के शोध किए जा रहे थे। और उनका लक्ष्य होता

था यह साबित करना कि हिन्दू समाज किस प्रकार दलितों को कुचलता रहा है। उस समय किशोर कुणाल जैसे आचार्य सामने नहीं आए थे जो यह साबित कर सकें कि हिन्दू समाज में ‘दलित देवो भव’ की परम्परा रही है। ईसाइयत से प्रेरित दलित आन्दोलन ने सामाजिक न्याय और क्रिश्चियन दलित लिबरेशन को हवा दी। वह उसी अभियान का हिस्सा था। उस समय भी रस्मी तौर पर दलित ईसाइयों की ओर से अनुसूचित जाति का दर्जा पाने के लिए ज्ञापन प्रधानमन्त्री को दिया जाता था।

इसमें दो नए मोड़ आ गए हैं। पहली बार केन्द्र में एक सुपर प्रधानमन्त्री की हैसियत वाली महिला है, जिसका समर्थन इस अभियान को प्राप्त है। भारत सरकार के प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष एम. वीरप्पा मोइली ने प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह को एक पत्र भेजा जिसमें उन्हें सलाह दी गई है कि रंगनाथ मिश्र आयोग की सिफारिश को जल्दी लागू कराएँ। उसमें इसका जिक्र है कि सोनिया गाँधी को एक ज्ञापन इस अनुरोध का प्राप्त हुआ है। इससे यह अपने आप ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रंगनाथ मिश्र आयोग को इस विषय पर विचार के लिए जो अतिरिक्त काम सौंपा गया वह यूपीए अध्यक्ष के दफ्तर की करामात रही होगी। दूसरा मोड़ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। संयुक्त राष्ट्र के ‘सर्ड’ (कमेटी ऑन दि इलिमीनेशन ऑफ रेशियल डिस्क्रिमिनेशन) ने उससे पहले अपनी सलाह भारत सरकार को पहुँचाई कि वह उन दलितों से कोई भेदभाव न करे जो ईसाई हो गए हैं। जाहिर है कि यह सर्ड की निगाह में रंगभेद का मामला है।

अपने अन्दर झाँकें चर्च संगठन

दलित ईसाइयों के आन्दोलन से चर्च संगठनों पर अनेक प्रश्न खड़े हो रहे हैं। दलित ईसाई माँग कर रहे हैं कि उन्हें भी अनुसूचित जाति का माना जाए। यह माँग जैसे-जैसे जोर पकड़ रही है वैसे-वैसे चर्च संगठनों के इस दावे की कलाई उतरती जा रही है कि ईसाइयत में भेदभाव नहीं होता; ईसाइयत समतामूलक धर्म है; उसमें जाति के आधार पर फर्क नहीं किया जाता। चर्च संगठनों ने अपने विस्तार के लिए जो-जो उपाय खोजे और उनसे अपनी किलेबन्दी की, वे ही उनके लिए मजबूत घेरेबन्दी का कारण बन गए हैं। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए हिन्दू धर्म जाति का दोष-दुर्गुण और छुआछूत का अभिशाप खोजा। यह बताया कि जाति भेद के कारण छुआछूत है।

इस आधार पर ईसाई मिशनरियों ने उन लोगों से कहा कि अगर वे छुआछूत के अभिशाप से मुक्ति चाहते हैं तो ईसाइयत का रास्ता पकड़ें। उनके इस दावे पर यकीन कर जाति से मुक्त होकर ऊपर उठने के लिए दलित समुदाय के लोग ईसाई बने। यहाँ यह भी गौर करने लायक है कि उनकी संख्या सैकड़ों साल बाद भी बहुत

मामूली है। साफ है कि पूरे दलित समुदाय ने कभी भी ईसाइयों के इस दावे को मन से नहीं माना। ईसाइयत में जाने का सिलसिला आज का नहीं है, सदियों पुराना है। उतना ही पुराना जितना भारत में ईसाइयत का इतिहास है। जिसे प्रामाणिक माना जाता है और जो विवाद से परे है वह यह है कि 1498 में पुर्तगालियों के भारत पहुँचने से ईसाइयत का प्रवेश प्रारम्भ होता है। ईसाइयों के एक तबके का दावा इससे भिन्न भी है कि सन् 52 में ही ईसाइयत ने केरल में अपना कदम रख दिया था। इसे गलत मानने वालों की संख्या काफी अधिक है। जाहिर है कि यह विवाद का मामला है।

इस पर विवाद नहीं है कि जाति और धर्मांतरण एक-दूसरे से जुड़े रहे हैं। ईसाइयों ने जाति को ही अपने धर्मांतरण का आधार बनाया। इसके ही सन्दर्भ में इतिहासकार प्रो. देवेन्द्र स्वरूप एक पते की बात बताते हैं। उनका कहना है कि जाति संस्था के बारे में हमारी आज की दृष्टि को बनाने में ईसाई मिशनरियों का भारी योगदान रहा है। जिसे विदेशियों ने जाति समझा और माना, वह वास्तव में उनकी अपनी समझ थी। उसका आधार उनके अपने शब्द और सन्दर्भ थे। उसे ही हमने भी मानना प्रारम्भ कर दिया। दलित आन्दोलन के साहित्य में भी जाति के बारे में काफी कुछ लिखा गया है। जाति शब्द के मूल स्रोत को खोजने के प्रयास हुए हैं। हर कोई यह मानता है कि पुर्तगालियों ने जाति को अपने शब्द 'कास्टा' का पर्यायवाची माना। भारतीय समाज के विघटन की साजिश में पुर्तगाली शब्द कास्टा का सहारा लेकर हिन्दुस्तान को जातिवाद की आग में झोंकने का षड्यन्त्र किया गया। जान विल्सन ने 'इंडियन कास्ट' (भारतीय जाति) नामक अपनी पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि कास्टा (जाति) भारतीय मूल का शब्द नहीं है। यह पुर्तगाली शब्द 'कास्टा', जिसका सामान्य अर्थ है मोड़ना, ढालना, समुदाय, प्रकार और गुण, से निकला है। 'कास्ट' का पर्याय भारतीय शब्द 'जाति' है जो लैटिन के जैस (जैट) और ग्रीक के प्रजाति या राष्ट्र (रेस या नेशन) से मिलता-जुलता शब्द है। इन वाक्यों से इसका सन्दर्भ पूरा होता है जातिभेद 'जैटिस डिस्क्रिमिना' (प्रजातीय भेदभाव) का सूचक है। विल्सन ने यह भी स्वीकार किया कि हिन्दुओं ने मूलतः वर्ण शब्द का प्रयोग किया है, फिर भी भारतीय विद्वानों ने 'वर्ण' शब्द का मूलार्थ खोजकर ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र शब्दों का वैदिक अर्थ जानने की कोशिश नहीं की। समूचे वैदिक वाङ्मय में वर्ण शब्द जाति या प्रजाति के अर्थ में कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। वर्ण शब्द का शाब्दिक अर्थ प्रवृत्ति है, वर्ग या जाति नहीं।

प्रो. देवेन्द्र स्वरूप ने लिखा है कि, "मिशनरियों का एकमात्र लक्ष्य स्थानीय निवासियों का धर्मांतरण रहा और इस लक्ष्य की प्राप्ति में उन्होंने सबसे बड़ी बाधा जाति-संस्था को पाया। सन् 1857 के पूर्व का विशाल मिशनरी साहित्य एवं पत्र-व्यवहार धर्मांतरण के मार्ग में दो ही बाधाओं का उल्लेख करता है। एक, जाति-संस्था के कड़े

बंधन, जिसके कारण धर्मांतरित व्यक्ति जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। वह पैतृक सम्पत्ति और व्यवसाय आदि में हिस्सा पाने का अधिकारी नहीं रह जाता था और वह इस प्रकार सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से निराश्रित हो जाता था। दूसरा कारण था पूरे समाज में ब्राह्मणों के प्रति अपार श्रद्धा का भाव। ब्राह्मणों की नैतिक-बौद्धिक श्रेष्ठता को चुनौती दे पाने में मिशनरी स्वयं को असमर्थ पा रहे थे। अपने इस अनुभव के कारण ईसाई मिशनरियों ने जाति-संस्था को ब्राह्मणवाद की रचना मानकर उसे तोड़ना ही अपना मुख्य लक्ष्य घोषित कर दिया। जाति प्रथा से छुटकारा दिलाने के नाम पर उन्होंने अपने धर्मांतरण के प्रयास निचली और निर्धन जातियों पर ही केन्द्रित कर दिए।"

मिशनरियों ने बाइबिल के इस कथन को मन्त्र बनाया। उसे दोहराया और समझाया कि, "हे (जाति) बोज़ से दबे और थके (दलित) लोगों, मेरे पास आओ। मैं तुम्हें विश्राम दूँगा।" छुआछूत और उससे जुड़े अन्य अभिशापों से ग्रस्त और त्रस्त लोगों ने इसमें अपने लिए एक आश्वासन देखा। वे ईसाइयत की तरफ आकर्षित हुए। उन्हें लगा होगा कि वे सचमुच एक नई दुनिया के मालिक बनने जा रहे हैं। इस भ्रम में वे ईसाई बन बैठे। जो लोग अपनी जाति से मुक्ति चाहते थे उन्होंने ईसाइयत को उद्धार का मार्ग माना। लेकिन केवल यही एक मात्र कारण उनके धर्मांतरण का नहीं रहा होगा। दलित आन्दोलन के साहित्य में पाँच कारण बताए गए हैं। एकसमान और बराबरी का दर्जा पाना। दोप्रेममय ईश्वर की शरण की लालसा। तीनशिक्षा, संस्कार और उन्नति के मार्ग खुलने की आशा। चारपीड़ा बाँटने वालों का संगसाथ मिलेगा। पाँचदलित मुक्ति होगी।

मिशनरियों में धर्मांतरण के तौर-तरीकों पर मतभेद रहे हैं। कई बार वे मूलगामी दिखते हैं। अपने-अपने तौर-तरीकों पर उनमें कट्टरता बनी रहती है। वे आपस में लड़ते भी रहे हैं। जिन बातों पर उनमें कोई मतभेद नहीं होता और सहमति रहती है वे क्या हैं? यह जाने बगैर मिशनरियों के कामकाज को नहीं समझा जा सकता। अरुण शौरी ने लिखा है कि इन बातों पर मिशनरियों में सहमति हमेशा रही है। एकभारत अज्ञान, अन्याय तथा झूठ की खोह है। दोइस स्थिति का मुख्य कारण हिन्दू धर्म है। तीनहिन्दू धर्म ब्राह्मणों के कारण जिन्दा है। चारचूँकि यहाँ के लोग बहुत दुखी हैं और जैसा कि ईसा मसीह ने अपने अन्तिम समय में हमें आदेश दिया था, उन्हें ईसाइयत में लाने के लिए हम पाबंद हैं। पाँचइसके लिए हिन्दू धर्म को उखाड़ फेंकना आवश्यक है। छहसलीब के सैनिकों का कर्तव्य है कि वे ब्राह्मणवाद के सुदृढ़ दुर्ग को घेर लें, उसे कमजोर करें और अन्त में धावा कर उस पर फतह पा लें। सातमिशनरी स्वभावतः अछूतों एवं आदिवासियों को अपना निशाना बनाएँगे, क्योंकि यही लोग सबसे ज्यादा उत्पीड़ित होने के कारण ईसा मसीह के

मुक्तिदायक स्पर्श की जरूरत रखते हैं। फिर, ज्यादा अनुकूल प्रतिक्रिया की सम्भावना भी इन्हीं से है। इस तरह सबसे ज्यादा जरूरतमन्दों को मदद करने से आज का हिन्दू समाज विखंडित हो जाएगा।

दलित ईसाइयों के आन्दोलन से सामने आया है कि जातिप्रथा से वे मुक्त नहीं हुए हैं। फिर यह सवाल पैदा होता है कि क्या चर्च संगठनों ने इस बारे में अपने विफलता मानी है? उनके ताजा दस्तावेज से इसका प्रमाण नहीं मिलता। ऑल इण्डिया कंसल्टेशन आन पाथ्स ऑफ मिशन इन इण्डिया टुडे के दस्तावेज में एक अध्याय भारत में कैथोलिक चर्च की मिशन सम्बन्धी हकीकतों पर है। उसमें उस इतिहास पर रोशनी डाली गई है जिसका सम्बन्ध दलित धर्मांतरण से है। दस्तावेज के अनुसार, “पीड़ित अनुसूचित जाति का ईसाइयत में सामूहिक धर्मांतरण का प्रथम दौर 16वीं सदी में तब शुरू हुआ जब पुर्तगाली अधिकारियों और मिशनरियों ने तमिलनाडु के कोरोमण्डल तट पर दलित परिवारों तथा केरल के तट पर मछुआरों को संरक्षण देना प्रारम्भ किया।” दलित ईसाइयों के आन्दोलन ने चर्च संगठनों पर आरोप लगाए हैं कि उनमें भेदभाव बरता जाता है। मिशन का दस्तावेज इस पर लीपापोती का प्रयास कर रहा है। दस्तावेज में हैं, “भारतीय समाज के हाशिए पर के लोगों के सामूहिक धर्मांतरण ने नई मिशनरी समस्याएँ खड़ी कर दीं। सख्त जाति विभेद से दो भिन्न तौर-तरीके वाले दो वर्ग के मिशनरी बन गए। हिन्दू जाति की संवेदशीलताओं के अनुरूप प्रतिक्रिया दिखलाते हुए 17वीं सदी से डी नोबिली, डि ब्रिटो, बेस्ची, डोनार्ड तथा कुछ अन्य उत्साही मिशनरियों ने पोशाक, भोजन, प्रार्थना-स्थल तथा जीवनशैली में सांस्कृतिक अनुकूलन के नए तरीके अपनाए।” इस पर मिशन दस्तावेज में किसी तरह का अफसोस नहीं जताया गया है। अपनी विफलता को न मानने की यह हठधर्मिता इसे साफ करती है कि दलित ईसाइयों के आन्दोलन का कोई असर चर्च संगठनों पर नहीं है। इसी दस्तावेज में उल्टे यह कहा गया है कि, “एक विधेयात्मक बात, फिर भी यह रही कि इसने सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में स्थानीय तथा सांस्कृतिक अनुकूलन के तरीके अपनाने की आधारशिला रखी।”

कैथोलिकों में आधे दलित हैं। इनके साथ चर्च भी भेदभाव बरतता है। इसी कारण दलित ईसाइयों का आन्दोलन खड़ा हुआ है। यही आन्दोलन प्रोटेस्टेंट ईसाइयों में भी हिलोरें ले रहा है। एक अनुमान है कि दलित ईसाइयों की संख्या करीब डेढ़ करोड़ है। वे अपनी जाति छोड़कर ईसाई बने थे। दलित ईसाई आन्दोलन से चर्च संगठनों को अपने अन्दर झँकना चाहिए। उससे कुछ नतीजे निकाल कर सुधार के कदम उठाने चाहिए। ऐसा होता नहीं दिख रहा है। चर्च संगठनों ने बड़ी चतुराई से दलित ईसाई आन्दोलन को दूसरी तरफ मोड़ दिया है। उनका प्रयास अगर सफल रहा तो इन दलित ईसाइयों को उसी गड्ढे में बनाए रखने की व्यवस्था की जा रही है। चर्च संगठनों का प्रयास है कि दलित ईसाई अपनी पुरानी पहचान में ही रहें। भारत सरकार

इसी रूप में उनको मान्यता दे। पुअर क्रिश्चियन लिबरेशन मूवमेंट के अध्यक्ष आरएल फ्रान्सिस ने एक नए रहस्य का उद्घाटन किया है। वे कहते हैं कि चर्च संगठनों को यह भय सताने लगा है कि स्थानीय लोग चर्च पर काबिज हो जाएँगे। वे द्वितीय वेटिकन महासभा के फैसले का हवाला देते हैं। उनका दावा है कि द्वितीय वेटिकन महासभा के इस फैसले को आम ईसाइयों से छिपाया जा रहा है। फैसला यह है कि चर्च स्थानीय लोगों के हवाले कर दिए जाएँ इससे ध्यान हटाने के लिए चर्च संगठनों ने सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत को उभारा है।

धर्म बदला पर हालात नहीं बदले

दक्षिण भारत के कई अखबारों में यह खबर छपी है। विल्लपुरम जिले में एक गाँव हैइरैयुर। वहाँ रविवार की प्रार्थना के बाद ईसाई समुदाय के दो वर्गों में टकराव हुआ। पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। गोली चलाने की नौबत आ गई। जिससे दो लोग मारे गए और कई जख्मी हुए। यह आपसी रंजिश का साधारण सा मामला नहीं है। किसी नुकते पर तनातनी हो जाने से वह घटना नहीं घटी। यह टकराव उन लोगों में हुआ जो जाति-पाँति के बंधन से मुक्त होने के लिए ईसाइयत के दरवाजे गए थे। रोमन कैथोलिक चर्च के उन अनुयायियों में जो टकराव हुआ वह हक जताने और उसे नकारने का पुराना खेल है। वन्नियार और दलित ईसाइयों में नोक-झोंक शुरू से ही है।

इस घटना में वन्नियार ईसाइयों ने दलितों के घरों में आग लगा दी। अगर यही घटना दो धार्मिक समुदायों के बीच होती तो खुले समाज के इस दौर में मीडिया उसे साम्प्रदायिक टकराव के रूप में पेश करता। मानवाधिकार के रक्षकों के स्वर तेज हो जाते और वे यह बताने की कोशिश करते कि एक समुदाय के बुनियादी अधिकारों पर हमला हो रहा है। ऐसा कुछ नहीं हुआ तो इसका कारण सिर्फ यह है कि मीडिया में इस घटना को आई गई बात मान लिया गया। क्या यह कम महत्वपूर्ण है कि सदियों पहले जो लोग इस आश्वासन पर ईसाई बने थे कि उन्हें हिन्दू समाज के उत्पीड़न से हमेशा के लिए परे हो जाना है, उन पर उन्हीं की धार्मिक बिरादरी ने हमला बोला है। फिर भी ऐसी घटना को सामान्य झगड़े की खबर बना दिया गया। इससे भी अजीब बात यह हुई है कि ईसाई समुदाय के कुछ व्यक्तियों ने अपनी वेबसाइट पर इस खबर को इस तरह प्रस्तुत किया मानों सारा गुनाह भारत सरकार का हो। इसे भी उस अभियान में शामिल कर लिया गया जिसे चर्च संगठन चला रहे हैं। वे दलित ईसाइयों को अनुसूचित जाति का दर्जा मिले, इसकी दलील देने का कोई मौका छोड़ते नहीं हैं।

यह घटना न पहली बार घटी है और न ही आखिरी बार। तमिनलाडु में कैथोलिक चर्च की उपस्थिति सदियों पुरानी है। अगर सेंट थामस के मिथक को छोड़

दें, क्योंकि उस पर विवाद है, तो भी 1602 से कैथोलिक चर्च का अस्तित्व माना जाता है। जब से वहाँ चर्च है तभी से उसमें ऊँच-नीच का भेदभाव भी है। ऐसा भी नहीं है कि पोप को अँधेरे में रखकर वहाँ यह सब चलाया जाता रहा हो। बाकायदे पोप की इजाजत से यह भेदभाव होता रहा है। एक पादरी वहाँ आया और उसने आसान तरीका अपनाया। सोचा कि ब्राह्मणों को ईसाई बना लेंगे तो उनके पीछे-पीछे सारा समाज ही ईसाइयत को स्वीकार कर लेगा। इसके लिए उसने पोप से इजाजत ली। जब यह प्रयोग विफल हो गया और ईसाइयत के प्रसार में किसी तरह की बढ़ोतरी नहीं हुई तो पादरियों का ध्यान दलित समुदाय की ओर गया।

इसी के परिणामस्वरूप 19वीं और 20वीं सदी में पादरियों ने दलित समुदायों को ईसाई बनाने में अपनी ताकत झोंक दी। उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि ईसाई होते ही उन्हें बराबरी का दर्जा मिलेगा। इज्जत मिलेगी। समाज में सम्मानपूर्वक जीने के अवसर उपलब्ध होंगे। इसके लिए शिक्षा और रोजगार के विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। उन्हें कष्ट के समय भाईचारे का सहारा होगा। दमन की पीड़ा से दूर हो जाएँगे और आजाद हवा में साँस ले सकेंगे। इन आश्वासनों ने दलितों को ईसाई बनने के लिए अपनी ओर खींचा। लेकिन वहाँ जाने पर उन्हें जो कुछ मिला वह बद से बदतर ही था। रती भर बदलाव की बयार उन्हें नहीं मिली। साफ था कि जिन खुशियों के लिए वे वहाँ गए थे। उन्हें नसीब नहीं हुई। वे एक ऐसी मृगमरीचिका में फँसे हुए हैं कि हर कदम और हर क्षण उन्हें अपने अधिकारों की रक्षा में गुजारना पड़ रहा है। साफ है कि वे आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं।

दलित ईसाइयों की संघर्ष गाथा रोज नए अध्याय जोड़ रही है। हिन्दू समाज में कभी छूत और अछूत का फर्क हुआ करता था। जो अछूत थे वे मन्दिर नहीं जा सकते थे। हिन्दू समाज के सुधारकों ने अभियान चलाकर इन कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंका। किसी ब्राह्मण को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी को मन्दिर प्रवेश से रोक सके। उन्हें इसका भी अधिकार नहीं है किसी को जाति के आधार पर छोटा या बड़ा ठहरा सके। उसी समाज सुधार की गति ने अब राजनीति को बदलना शुरू किया है। लेकिन जिस हिन्दू समाज की कुरीतियों का लाभ उठाकर दलितों को ईसाई बनाया गया था उस ईसाई समाज में ब्राह्मणों के अलग चर्च हैं और दलितों के अलग। जहाँ दलितों के अपने चर्च नहीं हैं वहाँ उन्हें ब्राह्मणों के चर्च के बाहर खड़े होकर प्रार्थना करनी पड़ती है।

तमिलनाडु के दलित ईसाई अपने अधिकारों की लड़ाई पिछले तीन सौ सालों से लड़ रहे हैं। उनकी इस लड़ाई को चर्च सफल होने नहीं दे रहा है। उन्हें एक या दूसरे भ्रमजाल में वह उलझाए रखे हुए हैं। इसे अगर किसी ने सबसे पहले पहचाना तो वे डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे। उन्होंने तब कहा था कि ईसाई समुदाय जाति की

जकड़न का नया जमावड़ा है। जब वे अपने बारे में फैसला करने जा रहे थे तब उन्हें अनेक तरह से आकर्षित करने की कोशिश की गई थी। वे उसमें नहीं फँसे। चर्च नेता दावा करते रहे हैं कि ईसाइयत में नस्लवाद है न जातिवाद है। फिर सवाल उठता है कि चर्च को दलित ईसाइयों के साथ न्याय करने में कौन रुकावट डाल रहा है। पुअर क्रिश्चियन लिबरेशन मूवमेंट का मत है कि ईसाइयत के दोनों संप्रदायों प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक ने वंचित लोगों को अपने साम्राज्यवाद के चश्मे से ही देखा है। इनकी मुक्ति में वे रुचि नहीं रखते। जातिवाद, अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और सामाजिक न्याय की लड़ाई को वे सरकार के खिलाफ मोड़ देते हैं।

इस बारे में चर्च संगठनों की अपनी रिपोर्ट भी इस तथ्य को पुष्ट करती है। एक रिपोर्ट में माना गया है कि दलित ईसाइयों के साथ चर्च संगठनों में भेदभाव बरता जाता है। तमिलनाडु में आज भी दलित ईसाइयों को बराबरी का दर्जा हासिल नहीं है। उन्हें उसी तरह से अलग बस्ती में रहना होता है जैसे दलित आबादी रहती है। उन्हें ब्राह्मणों के चर्च से दूर ही रखा जाता है। इन्हीं कारणों से दलित और ऊँची जाति के ईसाइयों में टकराव होते रहते हैं। ऐसे टकराव सिर्फ तमिलनाडु तक सीमित नहीं हैं। दलित ईसाइयों और ऊँची जाति के ईसाइयों में खूनखराबा हर जगह है। गोवा, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश और पाण्डिचेरीहर जगह दलित ईसाइयों के साथ भेदभाव है। चर्च और पुलिस के रिकार्ड ऐसी घटनाओं से भरे पड़े हैं।

ईसाई आबादी में दो-तिहाई कैथोलिक हैं और बाकी में दूसरे चर्च हैं। कर्नाटक में ईसाइयों में ज्यादातर दलित हैं। आन्ध्रप्रदेश में प्रोटेस्टेंट ज्यादा हैं। वहाँ कैथोलिकों में 75 फीसदी दलित हैं। ऊँची जाति के रेड्डी और कम्मा ईसाई दलित ईसाइयों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा हिन्दू समाज में चला आ रहा है। वहाँ पादरियों को भी जाति के आधार पर दर्जा हासिल होता है। तमिलनाडु में कब्रिस्तान भी जाति के आधार पर बँटे हुए हैं। ऊँची जाति के ईसाइयों की कब्रें दीवार खड़ी करके अलग कर दी जाती हैं और यह रिवाज चला ही आ रहा है।

पुअर क्रिश्चियन लिबरेशन मूवमेंट (पीसीएलएम) के अध्यक्ष आरएल फ्रांसिस ने एक खुला पत्र जारी किया है, जिसे उन्होंने प्रधानमन्त्री, विपक्ष के नेता, सांसदों, चर्च के पदाधिकारियों और मीडिया को भेजा है। जिसमें उन्होंने आरोप लगाया है कि चर्च नेतृत्व दलित ईसाइयों के साथ विश्वासघात कर रहा है। उन्हें दूसरे दर्जे का ईसाई बना रखा है। उन्हें शिक्षा, रोजगार और आर्थिक अवसरों से वंचित किया गया है। चर्च का तो विस्तार हुआ है लेकिन दलित ईसाई अपनी पुरानी अवस्था में पड़े हुए हैं। आरएल फ्रांसिस ने सवाल उठाया है कि 40 हजार से अधिक शैक्षणिक संस्थाओं को चलाने के बावजूद चर्च ने दलित ईसाइयों को अवसर क्यों नहीं दिया? विदेशों से उन्हें हजारों, करोड़ों रुपए इसके लिए मिलते हैं परन्तु उसका इस्तेमाल सही जगह और

सही काम पर नहीं किया जा रहा है। चर्च ने देश भर में लगभग 300 डायसिस (धर्म प्रान्त) बना रखे हैं। एक डायसिस में 50 हजार अनुयायी होते हैं। उनका सवाल है कि इस तरह के विशाल संसाधन के बावजूद धर्मांतरित ईसाइयों की दुर्दशा क्यों हो रही है? उन्होंने माँग की है कि आजादी के बाद चर्च का लेखा-जोखा करते हुए एक रिपोर्ट बनाई जानी चाहिए।

उन्होंने तमाम चर्च संगठनों के पदाधिकारियों से पूछा है कि क्या दलित ईसाइयों की मौजूदा स्थिति के लिए आप लोग जवाबदेह नहीं हैं? अगर दलित ईसाइयों को अनुसूचित जाति में ही रखना है तो फिर उनका धर्मांतरण क्यों किया गया? उनका कहना है कि चर्च संगठनों की देशी-विदेशी आमदनी का एक चौथाई हिस्सा दलित ईसाइयों पर खर्च कर दिया जाए तो उनके जीवन में खुशहाली आ सकती है। इसी तरह अल्पसंख्यक संस्थानों के 50 फीसद रोजगार दलित ईसाइयों को दे दिए जाएँ तो आने वाले 10 सालों में उनकी बेरोजगारी खत्म हो सकती है।

मुम्बई के महानगरीय और सार्वदेशिक चरित्र का क्षरण

डा. कुमार विमल*

मुम्बई में उत्तर भारतीयों के विरुद्ध हिंसक आन्दोलन हमारे धीरज को आमन्त्रित करता है। सन् 1960 ईस्वी में महाराष्ट्र राज्य के गठन के लगभग छह वर्षों के बाद से यानी सन् 1966 ईस्वी से ही मुम्बई में 'भूमि-पुत्रों' का राग अलापा जा रहा है। शायद, धीरज के सहारे ही हम इस प्रकार की पर-प्रान्तीयता की भावना और क्षेत्रीय असहिष्णुता से उत्पन्न समस्या का समाधान ढूँढ़ सकेंगे। यह सच है कि सन् 1990-2007 ईस्वी की अवधि में मुम्बई में उत्तर भारतीयों की संख्या में वृद्धि हुई है। सिर्फ मुम्बई में ही नहीं, संसार के सभी महानगरों में जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। फिर बीते पाँच दशकों में मुम्बई की जनसंख्या में जो कई गुणा वृद्धि हुई है, उसका दोष केवल उत्तर भारतीयोंविशेषकर बिहारियों¹ या हिन्दी-भाषियों के मथ्ये नहीं मढ़ा जाना चाहिए। उपलब्ध आँकड़ों के मुताबिक जनसंख्या की दृष्टि से सन् 1980 ईस्वी में विश्व के महानगरों में मुम्बई का दसवाँ स्थान था; किन्तु सन् 1995 ईस्वी में उसका पाँचवाँ स्थान हो गया और अब अनुमान है कि सन् 2010 ईस्वी के आते-आते विश्व के महानगरों में मुम्बई का तीसरा स्थान हो जाएगा।

इस बेतहाशा जनसंख्या-वृद्धि में बिहारियों का योगदान बहुत सीमित है। मुम्बई के मेट्रोपोलिटन क्षेत्र के सात वार्डों और अड़तीस सेक्टरों² में कोई ऐसा वार्ड या सेक्टर नहीं है, जिसे जनसंख्या की दृष्टि से बिहारियों का इलाका कहा जा सकता है। ज्यादातर बिहारी मुम्बई के असंगठित क्षेत्रों में श्रमिक का काम करते हैं या छोटे-छोटे रोजगारों का सहारा लेकर अपनी हाड़तोड़ मिहनत की कमाई खाते हैं। किन्तु, 'कदुआ पर सितुआ चोखा' की कहावत को चरितार्थ करते हुए इन्हें ही भूमिपुत्रवादी हिंसक आन्दोलन का निशाना बनाया जाता है। शायद, 'सेना' का बाघ भेंड़ी बाजार में गरज नहीं पाता है और न 'झोंपड़त-दादा' धारावी में किसी से पंगा ले पाते हैं।

* डा. कुमार विमल, पूर्व कुलपति; पता : 96, एम. आई. जी. एच., लोहिया नगर, पटना-20, दूरभाष : 0612-2352944, चलभाष : 94310 20950, 9955767206

मुम्बई की जनसंख्या में बढ़त और वृद्धिगत घनत्व की प्रवृत्ति पहले से रही है। सत्रहवीं शताब्दी में पुर्तगाली शासन-काल के अन्तर्गत बम्बई की कुल जनसंख्या दस हजार थी। किन्तु, जब चार्ल्स द्वितीय और पुर्तगाल की इनफान्टा (Infanta of Portugal) के बीच हुई विवाह-व्यवस्था के अनुसार इम्फ्री कुक (Humphrey Cooke) ने बम्बई द्वीप का अधिग्रहण सन् 1661-65 ईस्वी में किया और उसके बाद जेरल्ड आंगियर (Gerald Aungier) ने सन् 1669-77 ईस्वी की अवधि में बम्बई का विकास-कार्य प्रारम्भ किया, तब बम्बई की आबादी पचास हजार पर पहुँच गई। सन् 1864 ईस्वी तक आते-आते बम्बई की आबादी आठ लाख से ऊपर हो गई और अब बम्बई की आबादी लगभग एक करोड़ बीस लाख से अधिक हो गई है।

महानगरों में संसाधन-केन्द्र और जीवन-यापन की अनेक भौतिक सुविधाएँ अधिक संख्या और अधिक मात्रा में उपलब्ध रहती हैं। इसलिए इच्छुकों और बेरोजगारों का पलायन या प्रव्रजन महानगरों की ओर अधिक होता है। मुम्बई जैसा महानगर भी तो अपने देश का ही महानगर है, जहाँ विकास के क्षेत्रीय असन्तुलन से पीड़ित गरीब अथवा महत्वाकांक्षी लोग रोजी-रोटी, सम्पदा और शहरत की तलाश में जाते हैं। किन्तु, ऐसे लोगों को क्षेत्रीयतावाद के आधार पर खदेड़ना या मार-पीट कर भगा देना देश की राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से घातक है; भारत के संविधान की धारा 15 और धारा 301 की मूल चेतना के विरुद्ध है तथा मानवाधिकार के प्रवाह का भी अवरोधक है। इसलिए मुम्बई में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना की उत्तर भारतीयों के विरुद्ध हरकतें हों या 'कर्नाटक रक्षण वेदिके' की ऐसी हरकतें हों अथवा असम और पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी-भाषियों की हत्याएँ और निकाला हों, उनसे निश्चय ही भारतीय संविधान की मूल प्रतिज्ञा, राष्ट्र की भावात्मक एकता और मानवाधिकार का हनन होता है। ऐसी क्षेत्रीयतावादी मनोवृत्तियाँ और हिंसक घटनाएँ अन्ततोगत्वा देश तथा राष्ट्र के लिए विखण्डनकारी सिद्ध होंगी। मानवाधिकार-हनन के ऐसे मामले 'द प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमैन राइट्स ऐक्ट', 1993 के अधीन गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग अधिनियम की धारा 12 (e) और धारा 13 (2) के प्रावधानों को भी समुचित कार्रवाई के लिए आकृष्ट करते हैं। इस सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी सही और निर्भीक निरीक्षा की है, जिसकी उम्मीद इस देश के नेताओं से की जाती थी। किन्तु, हमारे नेताओं का विवेक तो 'वोट बैंक' की चिन्ता से त्रस्त-ग्रस्त रहता है।

मुम्बई की हालिया हरकतों में उत्तर भारतीयों पर हमला इतना अमानवीय है, मानवाधिकार का ऐसा उल्लंघन है, जिससे यह सवाल पैदा होता है कि क्या यह उत्तर-मानवीय युग (पोस्ट-ह्यूमैन इअरा!) है? क्या मनुष्यता और मानवीयता का युग समाप्त हो चुका है? मुम्बई में कभी दक्षिण भारतीयों के विरुद्ध 'बजाओ पुंगी, भगाओ लुंगी' जैसा नारा लगाया जाता है और कभी मिहनतकश 'भैया' लोगों को पीटा या खदेड़ा जाता है, जबकि इस देश के नागरिकों को इस देश के किसी भी भू-भाग में रहने

और विधि-विहित माध्यमों-साधनों से जीविका अर्जित करने का अधिकार है। यह इस देश की रुग्ण और विभक्त मानसिकता का द्योतक है कि धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के नाम पर पूर्वोत्तर भाग में बांग्लादेशी घुसपैठियों को प्रश्रय दिया जाता है और मुम्बई को बसाने में जिन बिहारियों का ऐतिहासिक योगदान है, उन्हें मराठी समाज और 'मराठी मानुस' के लिए विजातीय मानते हुए मुंबई और आमची मुंबई से बाहर खदेड़ा जा रहा है। प्रकट है कि मुंबईकर, पुणेकर, मराठी मानुस इत्यादि जैसे विभेद पैदा कर वहाँ और भी सांस्कृतिक असहिष्णुता पैदा की जा रही है। नतीजतन इन दिनों 'रेनबो सिटी' मुम्बई में सांस्कृतिक सहिष्णुता और समावेशी (inclusive) प्रवृत्ति का हास हो रहा है। स्थान-नामों में परिवर्तन करमद्रास को चेन्नई, बंगलोर का बेंगलुरु, कलकत्ता को कोलकाता, पांडिचेरी को 'पुडुचेरी' (Pudicherry), लेनिनग्राड को सेंट पीटर्सबर्ग या पेट्रोग्राड, फ्रुंजे को पिश्पेक, अपर वोल्गा को बुर्किना फासो, रोडेसिया को जिम्बाब्वे और बंबई को मुम्बई बनाकर अपनी पहचान तथा अपने अतीत को सुरक्षित एवं अपनी सामूहिक स्मृति को सशक्त रखा जा सकता है; किन्तु, स्थान-नामों में ऐसे परिवर्तन कर क्षेत्रीय या जातीय-प्रजातीय दुर्भावनाओं को फैलाना उचित नहीं है।

मुम्बई ने एक औपनिवेशिक बन्दरगाह से आगे बढ़कर एक सार्वदेशिक महानगर (या 'ब्लू-चिप' मेट्रोपोलिस) की जो वर्तमान प्रस्थिति (स्टेटस) अर्जित की है, उसमें बिहारियों का बहुत बड़ा योगदान है। जिम मासेलॉस (Jim Masselos) ने मुम्बई की आकारिकी (मॉर्फोलॉजी), क्षेत्र-विस्तार, स्थानीयता और पहचान को दृष्टिगत रखते हुए 'द सिटी इन ऐक्शन' अथवा 'बॉम्बे एण्ड मुम्बई : द सिटी इन ट्रान्जिशन' नामक जो पुस्तकें लिखी हैं, उनके अन्तर्गत बम्बई के विकास में बिहार के योगदान को रेखांकित नहीं किया गया है। गिलियन टिण्डल (Gilleen Tindall) लिखित रोचक पुस्तक 'सिटी ऑव गोल्ड' (द बायोग्राफी ऑव बॉम्बे) का भी यही हाल है। इसी तरह बम्बई के विस्तार-प्रसार पर लिखते समय Forbes ने 'Oriental Memoirs' में, Sir Richard Temple ने 'Men & Events of My Time in India' में, S.M. Edwardes ने 'The Rise of Bombay : a Retrospect' में और James Douglas ने 'Bombay & Western India' में बम्बई के विकास में उत्तर भारतीयोंविशेषकर बिहारियों के योगदान का उचित मूल्यांकन नहीं किया है। वास्तविकता यह है कि मुम्बई को विकसित करने में मराठियों से अधिक योगदान वहाँ के गैर-मराठी निवासियों का है और मुम्बई प्रारम्भ से एक 'मेल्टिंग पॉट' रहा है। इस बिन्दु पर सर्वाधिक प्रामाणिक विवेचन 'बम्बई सिटिजेन्स कमिटी' के उस दो सौ पृष्ठीय प्रतिवेदन में किया गया है, जो सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास जैसे प्रमुख कपास-सौदागर और जे.आर. डी. टाटा जैसे प्रमुख उद्योगपति के नेतृत्व में राज्य पुनर्गठन आयोग (एस.आर.सी.) के समक्ष सन् 1954-55 ईस्वी में प्रस्तुत किया गया था।

प्रेसिडेन्सी-युग में भी जब बम्बई प्रेसिडेन्सी थी और बिहार बंगाल प्रेसिडेन्सी का हिस्सा था, तब बिहार ने सस्ते दाम पर अपने खनिज पदार्थों (मुख्यतः लोहा-कोयला) से तथा अपने मानव-श्रम से बम्बई को रौनक-अफरोज बनाया था। उसके बहुत पहले जब बम्बई सात द्वीपों (कोलाबा, मजगाँव, माहिम, शीव, वर्ली, अपोलो बंदर और ओल्ड वूमेन्स आइलैण्ड) का एक विशृंखल, अविकसित तथा अस्वास्थ्यकर इलाका था, तब मुख्यतः बिहार के श्रमिकों ने ही जान की बाजी लगाकर बम्बई द्वीप-समूह को आवास-विकास योग्य बनाया था। कहना तो यह सही है कि क्रिश्चियन लासेन (Christian Lassen) के जीवन-काल, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल, गुजरात के सुल्तानी शासन-काल और पुर्तगाली शासन-काल³ के बहुत-बहुत पहले से ही यानी राजा बिम्ब के शासन-काल से ही बम्बई आब्राजकों का केन्द्र रहा है, जिसे बसाने और सँवारने में बिहारियों का विशेष योगदान है। बम्बई को बसाना आसान काम नहीं था। वहाँ लगातार छह महीने तक रहनेवाले लोग कोढ़ी हो जाते थे या हैजा और प्लेग (Bubonic Plague) के शिकार होकर मर जाते थे। इसका उल्लेख 'इम्पीरियल गेजेटियर ऑव इण्डिया' के अन्तर्गत 'बम्बई प्रेसिडेन्सी' वाले खण्ड में भी मिलता है। यह कहावत मशहूर थी कि बम्बई में रहनेवालों की आयु दो बरसात (मॉन्सून) से अधिक नहीं होती। लेकिन बम्बई की विकास-गाथा के उन कठिन कष्टकर दिनों को भुला कर आज मुम्बई से बिहारियों को डण्डे के बल पर भगाया जा रहा है। पेशवाओं के 'बखर' से तो यह भी ज्ञात होता है कि बाजीराव द्वितीय के काल तक मराठी शासक बिहार के मैथिल पण्डितों और विद्वानों को पूना एवं अन्य विद्या-केन्द्रों में आमंत्रित कर 'दक्षिणा ग्रांट' की राशि से सम्मानित किया करते थे, ताकि उनसे प्रेरणा ग्रहण कर पूना, बम्बई इत्यादि जैसे शहरों में पाण्डित्य और संस्कृत शिक्षा का प्रचार हो सके। रानाडे और तेलंग ने 'मराठा क्रॉनिकल्स' पर लिखित अपनी पुस्तक में इसका उल्लेख किया है।

विचारणीय यह है कि मुम्बई को 'गरीब-द्रोही' महानगर बनाना क्या उचित है? शायद, मुम्बई को केवल मराठियों का 'सजातीय सहवास' (akin living) बनाना मुम्बई के लिए हितकर नहीं होगा; ऐसा काम कर मुम्बई को शंघाई नहीं बनाया जा सकता वह शंघाई, जिसका क्षेत्रफल 282 वर्ग किलोमीटर से बढ़कर अब 6000 वर्ग किलोमीटर हो गया है। आजकल महानगरों में 'अतिशयतिशय शहरीकरण' (ओवर अर्बनाइजेशन) से अनेक नई समस्याएँ पैदा होती ही हैं, जिनकी ओर जोसेफ गुग्लर (Joseph Gugler) ने अपनी पुस्तक 'सिटीज इन डेवलपिंग वर्ल्ड' में सार्थक संकेत किए हैं। किन्तु, उन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के बदले उनसे ऊबकर क्षेत्रीयतावाद का जहर फैलाना उचित नहीं है। क्षेत्रीयतावाद का जहर फैलाने से तो बेहतर होता कि क्षेत्रीयतावादी लोग मुम्बई पर 'शहरे आशोब' लिख देते! मुम्बई में मराठियों के

हितों की रक्षा होइस बात से किसी विवेकशील व्यक्ति का विरोध नहीं हो सकता। किन्तु, संयम और सावधानी इस बिन्दु पर चाहिए कि मराठियों के हितों की रक्षा राष्ट्रीय हित और जन-हित अर्थात् लोक-हित के साथ तालमेल बैठा कर की जाए।

दूसरी बात यह है कि मुम्बई के आवासन, आधुनिकीकरण और आन्तरिक प्रबंधन, मुकामी इन्तजामियात को केवल मुम्बई की स्थानीय राजनीति के हवाले सुपुर्द नहीं कर, इन मुद्दों पर 'नेशनन अर्बन रिन्युअल मिशन' की भी राय ली जानी चाहिए। कारण, मुम्बई गैर-बराबरियों का महानगर है, वह हिन्दुस्तान की औद्योगिक-वाणिज्यिक राजधानी है और कई तरह की अतियों (extremes) का शिकार है।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि 'भैया' लोगों, गुज्जुओं और लुंगीधारियों को मुम्बई से बाहर भगा कर क्या मुम्बई 'मेट्रोपोलिस', 'मेगालोपोलिस', 'कॉस्मोपोलिस' या 'ग्लोबल सिटी' बना रहेगा? क्या वह अपने 'कॉस्मो टैग' को सुरक्षित रख सकेगा? केवल आकार-प्रकार और वाणिज्य-व्यापार के नाभि-मूल (hub) के रूप में महानगर बनने से मुम्बई का काम नहीं चलेगा। मुम्बई को एक बहुप्रजातीय-बहुसांस्कृतिक मानसिकता भी बनाकर रखनी होगी। ज्ञातव्य है कि मुम्बई में लगभग 62 भाषाएँ बोली जाती हैं। वहाँ गैर-मराठी भाषियों की संख्या 57 प्रतिशत है, जबकि मराठी भाषियों की संख्या केवल 43 प्रतिशत है। इन दिनों महानगरों के निर्जीव स्थापत्य तक में मिश्रण की प्रवृत्ति फूल-फल रही है प्राच्य गोपुरों, इस्लामी गुम्बदों और गोंधिक मीनारों तक में सद्भावपूर्ण संवाद चल रहा है और एक वैश्वीकृत स्थापत्य महानगरों में प्रचलित हो रहा है। किन्तु, उस मुम्बई महानगर का सजीव मानव-समाज अपनी मानसिकता को नहीं बदल पा रहा है, जिसने स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय अपने राष्ट्रीय और महाराष्ट्रीय चरित्र का परिचय दिया था, जो देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ था और जहाँ से सन् 1942 ईस्वी का सुप्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' नारा दिया गया था। इसलिए यह सोचना होगा कि मुम्बई जैसे राष्ट्रीय चरित्र के महानगर के लिए क्षेत्रीय उमंग (रेजिनल इथॉस) तथा अन्ध उपराष्ट्रीयता में डूब जाना और अपनी जनपक्षीय 'टपोरी' (Tapori) संस्कृति को, जो वहाँ की बहुभाषिक-बहुक्षेत्रीय मिश्रित संस्कृति है, विनष्ट कर देना क्या उचित होगा? शायद, मुम्बई की सार्वदेशिकता की रक्षा हर हालत में की जानी चाहिए। यहाँ की गणपति-पूजा, नरेल (नारियल) पूर्णिमा, डांडिया रास, गोकुलाष्टमी, होली, दीवाली और दशहरा जैसे त्योहारों में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, कोली और पारसीसभी शामिल होते रहे हैं। इस मेलजोल की भावना को बरकरार रख कर ही यह महानगर आधुनिक भारत का 'मेटाफर' बन सकेगा और लघु भारत (मिनिचेर इण्डिया) का विरुद्ध धारण कर सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि 'मुम्बई' 'बम्बई' की तुलना में अधिक सम्पन्न है; किन्तु, 'बहिष्कार की राजनीति' के कारण 'मुम्बई' में संकीर्णताएँ बढ़ती जा रही हैं।

यह सच है कि नए-नए प्रवासियों, प्रवेशकों और वहीं पर बस जाने के इच्छुक आगन्तुकों की बेतहाशा संख्या-वृद्धि महानगर के क्षेत्रीय साँचे (templates) को कुप्रभावित करती है और आबादी की संरचना को कई दृष्टियों से झकझोर देती है। इस वस्तुगत पृष्ठभूमि में यदि मुम्बई में आबादी की वृद्धि हुई हैझोपड़-पट्टी, 'शैंटी', 'स्लम' इत्यादि के कारण अव्यवस्था पैदा हुई है, तो उस महानगर में 'शहरी प्रबन्धन' (urban managerialism) के नए तरीकों को अपनाया जाना चाहिए, उपनगरीय समूहन ('Conurbation' और 'agglomeration') को नियन्त्रित करने पर विचार किया जाना चाहिए; न कि 'भैया' लोगों को मार-पीट कर वहाँ से निकाल देना चाहिए। यदि नगर-निवेशन-विशेषज्ञ मुम्बई के विस्तार और बढ़ती आबादी के सन्दर्भ में 'सेकेंडरी सिटीज', 'मार्केट टाउन्स' तथा 'केन्द्रित विकेन्द्रीकरण' (सेंट्रलाइज्ड डिसेंट्रलाइजेशन) की अवधारणाओं पर भी विचार कर सकें, तो अति उत्तम होगा। मुम्बई के सतत विकास और सुख-समृद्धि के आकांक्षियों को यह बात जेहन में रखनी होगी कि उत्पादन, वाणिज्य-व्यापार और समग्र जीवन के सरंजाम में 'मशीन' मनुष्य का स्थानापन्न नहीं बन सकती। मुम्बई-जैसे विशाल महानगर को विकास के प्रकर्ष पर पहुँच जाने के बाद भी मानव-श्रम की आवश्यकता बनी रहेगी। यह मानव-श्रम उन्हें मुख्यतः उत्तर भारत से ही मिल सकेगा।

हिन्दी-भाषी प्रदेश के राष्ट्रीय नेताओं, विशेषकर प्रधान मन्त्रियों ने, आजादी पाने के बाद, अपनी लोकप्रियता को बढ़ाने और अपनी गद्दी को सही-सलामत रखने की कोशिश में अधिकतर महत्त्वपूर्ण उद्योगों, उत्पादनों, अनुसंधान-केन्द्रों, विकास-प्रकल्पों और आर्थिक नाभि-मूलों को विंध्याचल के दक्षिण में स्थापित कर दिया। फलस्वरूप उत्तर भारत में रोजगार, उद्योग और जीविकोपार्जन के अवसर बढ़ती आबादी तथा शिक्षा के अनुपात में नहीं बढ़ सके और हिन्दी प्रदेश के वासिन्दों को रोजी-रोटी के लिए मुम्बई जैसे महानगरों में जाना पड़ा। इसलिए उत्तर प्रदेश और बिहार के हित-चिन्तकों को मुम्बई में पैदा हुए हालिया हालात के तपते हुए तवे पर केवल अपनी राजनीतिक रोटी नहीं सेंकनी चाहिए, बल्कि उन्हें इस बिन्दु पर भी क्रियाशील होना चाहिए कि उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे प्रान्तों में रोजगार के अवसरों की वृद्धि हो तथा उद्योग, वाणिज्य-व्यापार और कल-कारखानों की संख्या में भी बढ़त हो।

इन सारी बातों की तह में जाने से ऐसा अनुमान होता है कि यदि मुम्बई में क्षेत्रीय, भाषाई तथा जातीय अस्मिताओं की टकराहट हिंसक रूप लेती रहीसाथ ही, बढ़ती गई, तो समय की सूई को पीछे घूमने का मौका मिल जाएगा और 'बम्बई सिटीजेन्स कमिटी' की वह पुरानी माँग जोर पकड़ लेगी कि बम्बई के विकास के इतिहास को दृष्टिगत रखते हुए मुम्बई को एक संघ-शासित राज्य बना दिया जाए अथवा इसे एक पृथक 'नगर राज्य' का दर्जा दे दिया जाए और महाराष्ट्र की राजधानी पुणे अथवा नासिक में स्थापित कर दी जाए।

संदर्भ

1. कहा जाता है कि मुम्बई में लगभग 45 लाख बिहारी रहते हैं और वहाँ पर संगठित रूप में छठ पूजा कर वे अपनी अस्मिता स्थापित करना चाहते हैं।
2. कोलाबा, फोर्ट, एस्लानेड, माण्डवी, चकला, खार तलाव, कुम्भरवाड़ा, भुलेश्वर, धोबी तलाव, तारदेव, गिरगाँव, चौपाटी, महालक्ष्मी, मजगाँव, परेल, माटुंगा, दादर, माहिम, प्रभादेवी, वर्ली, लव ग्रोव इत्यादि।
3. यह विदित है कि जब सन् 1652-54 ईस्वी में भारत के पश्चिमी समुद्रतटीय इलाके में एंग्लो-डच-चैर-विवाद के कारण अंग्रेजों और पुर्तगालियों की निकटता बढ़ी, तब सन् 1661 ईस्वी में पुर्तगालियों और अंग्रेजों के बीच की गई विवाह-सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने पूर्वी घाटी में डचों के विरुद्ध पुर्तगालियों के आधिपत्य को आश्वस्त किया। साथ ही, जब ब्रगांजा (पूर्वोत्तर पुर्तगाल) की कैथरीन चार्ल्स द्वितीय (इंग्लैण्ड) की रानी बनी, तब पुर्तगालियों ने बम्बई का इलाका चार्ल्स को दहेज में दे दिया। बाद में सन् 1668 ईस्वी में चार्ल्स ने बम्बई का आधिपत्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी को हस्तान्तरित कर दिया। तब बम्बई की विकास-गाथा प्रारम्भ हुई और सर जार्ज ऑक्सेन्डेन (1662-1669 ई.), जेराल्ड ऑगियर (1669-1677 ई.) और सर जान चाइल्ड (1682-1690 ई.) के प्रशासन-काल में बम्बई का द्रुत विकास हुआ तथा पश्चिमी प्रेसिडेन्सी का मुख्यालय सन् 1687 ईस्वी में सूरत से बम्बई स्थानान्तरित हो गया। अंग्रेजों के शासन-काल में शहरों के पाश्चात्य ढाँचे के अनुसार भारत में चार प्रकार के शहर बसाए गएबन्दरगाही शहर, छावनी के शहर, राजधानी नगर और औद्योगिक-व्यापारिक केन्द्रों के शहर। उक्त चार प्रकार के शहरों में पाश्चात्य बन्दरगाही शहरों के ढाँचे पर बम्बई का नगर बसाया गया। बड़ी जनसंख्या की दृष्टि से बम्बई जैसे भारत के दूसरे शहर हैंदिल्ली, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद और बंगलोर। किन्तु, ये शहर अब आबादी की बढ़त की दौड़ में बम्बई से बहुत पीछे छूटते जा रहे हैं। बम्बई में घरेलू और औद्योगिक कार्यों के लिए पानी की समस्या द्वितीय विश्व-युद्ध के समय से ही पैदा होती रही है। अब जनसंख्या में वृद्धि के कारण बम्बई में जलापूर्ति की समस्या और भी कठिन हो गई है। सन् 1944 ईस्वी में बम्बई के उद्योगपतियों द्वारा तैयार की गई बम्बई की विकास-योजना, जो Bombay Plan (1944) के नाम से जानी जाती है, अब भी विचारणीय है।

आस्था को बचाने का पर्याय है, गंगा को बचाना

पवन कुमार गुप्ता*

पिछले दिनों प्रो. गुरुदास अग्रवाल ने घोषणा की है कि वे आगामी गंगा दशहरा (13 जून, 2008) से उत्तरकाशी में गंगा की रक्षा/सुरक्षा व संवर्द्धन/संरक्षण को लेकर आमरण अनशन करेंगे। प्रो. गुरुदास अग्रवाल जिनकी आयु अब करीब 75 साल है और ऊर्जा और स्वास्थ्य की दृष्टि से वे 60/62 साल से अधिक नहीं दिखते, ने बहुत सोच-विचारने के बाद 14 अप्रैल, 2008 (राम नवमी) के दिन यह घोषणा की।

अधिकांश लोग प्रो. गुरुदास अग्रवाल के बारे में अधिक नहीं जानते। वे मुजफ्फरनगर के एक गाँव में जन्मे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा मुजफ्फरनगर में ही हुई। बाद में उन्होंने रुड़की विश्वविद्यालय (अब आई.आई.टी.) से सिविल इंजीनियरिंग में स्नातक उपाधि प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने बर्कले विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया से एम.एस. और पी-एच.डी. की उपाधियाँ लीं। वे आई.आई.टी. कानपुर के सिविल इंजीनियरिंग विभाग के विभागाध्यक्ष रहे और वहाँ रहते हुए वे एनवायरनेमण्टल साइंस पढ़ाते रहे। वहीं वे छात्र कल्याण संकाय के डीन भी रहे। सन् 1981 से सन् 1983 तक वे सेण्ट्रल पोल्यूशन बोर्ड के प्रथम संस्थापक सदस्य-सचिव रहे। पर्यावरण संरक्षण को लेकर प्रदेश और केन्द्रीय सरकार ने जो समितियाँ बनाईं उनमें से अनेक में वे सदस्य रहे और पर्यावरण को भारतीय चिंतन और परम्परा से देखने पर बल दिया। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों से वे चित्रकूट में गाँधी ग्रामोद्योग विश्वविद्यालय में मानक प्रोफेसर हैं। आई.आई.टी. और चित्रकूट में रहते हुए इन्होंने सैकड़ों छात्र-छात्राओं को प्रेरणा दी है और पर्यावरण को एक नई दृष्टि से देखने की समझ दी। तीस-चालीस वर्ष बाद भी इनके छात्र इनसे प्रेरणा पाते हैं और सम्मान करते हैं, ऐसे शिक्षक विरले ही होते हैं।

जी.डी. कोई राजनीतिज्ञ या आन्दोलनकारी (activist) नहीं हैं, उन्होंने तो पूरी उम्र पढ़ाया है। अपने छात्र-छात्राओं के चौमुखी विकास में सहायक और प्रेरक रहे

* अध्यक्ष, सिद्धसोसाइटी फॉर द इण्टिग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ द हिमालयज, मसूरी

हैं। इस देश की परम्पराओं को समझकर उनका सम्मान करते हुए शिक्षा एवं पर्यावरण की शिक्षा एवं समझ में इस देशज दृष्टि को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। पर्यावरण की उनकी समझ गहरी रही है। अपने आई. आई. टी. कानपुर के दिनों में उन्होंने अनेक युवाओं को एक नई दृष्टि और सम्भवतः जीवन जीने की एक नई दिशा दी। स्वर्गीय अनिल अग्रवाल ने इन्हीं की प्रेरणा से 'सेण्टर फॉर साइंस एण्ड एनवायरनेमण्ट' की स्थापना की। इस संस्था ने पर्यावरण के सन्दर्भ में अनेक अध्ययन किए हैं। पानी को लेकर Dying Wisdom नाम से रिपोर्ट निकाली, पर्यावरण को लेकर अनेक वार्षिकी निकाली और हाल में कोला को लेकर बड़ा आन्दोलन छेड़ा।

जी.डी. उच्च स्तर की आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी अपने को बचा पाए। इस सन्दर्भ में वर्तमान निर्वासित तिब्बती सरकार के प्रधानमन्त्री प्रो. सामदोंग रिन्पोछे का कथन याद आता है, "अधिकांश लोग वही शब्दावली इस्तेमाल करते हैं जो पाश्चात्य पद्धति में प्रचलित है। अगर हम बहुत ध्यान से नहीं देखेंगे तो हमारी सोच और हमारी खोज दोनों किसी दूसरी दिशा से निर्देशित होते रहते हैं। एक भारतीय व्यक्ति, भारतीय पद्धति से जीए, भारतीय सोच-पद्धति से सोचे तो उसमें एक मौलिकता रहती है। उसी प्रकार एक तिब्बती, तिब्बती-रूप में जीए और उसी रूप में सोचे, तभी वह मौलिक रहता है। लेकिन हम लोगों ने यह आदत डाल रखी है कि जो कुछ भी सोचना हो, खोजना हो, विश्लेषण करना हो, सभी पाश्चात्य पद्धति से करें ताकि उसको कहा जा सके कि वह साइंटिफिक है।"

पढ़े-लिखे भारतीय जिनमें हमारे नीतिकार और विशेषज्ञ शामिल हैं, पश्चिम से बुरी तरह प्रभावित हो गए हैं। कहीं गहरे में एक हीन भावना भी है कि हमें अपनी चीजों, अपनी परम्पराओं को या तो नजरअन्दाज करना है या उन्हें 'साइंटिफिक' बाना पहनाकर पेश करना है। साइंस कोई पद्धति न रहकर, सत्य की खोज न रहकर, एक भूत जैसा बन गया है, जो हमें डराता रहता है और हम डर की वजह से जो सही है जो हमें अन्दर से स्वीकार होता है, उसे नकारते रहते हैं। इस देश में नदियों का जितना सम्मान है, उतना शायद किसी अन्य देश में नहीं। ऐसा अनुमान है कि नर्मदा नदीअमरकंटक से अरब सागर तक तीन हजार किमी. की दूरी (दो किनारों की लम्बाई छः हजार किमी.) की परिक्रमा, किसी भी समय, पचास हजार साधारण ग्रामीण, करते रहते हैं। ये लोग इस यात्रा को तीन वर्ष, तीन माह और तैंतीस दिन में पूरा करते हैं। और इस पूरी अवधि में रहने-खाने के लिए कोई खास खर्च नहीं करना पड़ता। रास्तेभर साधारण लोग इनका आतिथ्य करके अपने को धन्य मानते हैं। कमोबेश ऐसा अन्य नदियों के साथ भी होता है। एक बार एक साधु जिन्होंने गंगा की गोमुख से गंगा सागर तक की 2500 किमी. की परिक्रमा जीवन में दो बार की है, बता रहे थे कि इस 2500+2500 कुल पाँच हजार किमी. में दोनों तटों पर उन्हें एक

भी ऐसा गाँव नहीं मिला जिसका गंदा-मैला, गंगा में जाता हो और एक भी ऐसा शहर नहीं मिला जिसका गंदा-मैला, गंगा में नहीं जाता हो। साधु मुझ से कह रहे थे कि, “पर्यावरण की बात करने वाले आप पढ़े-लिखे लोग फिर भी गाँव को पिछड़ा और शहर को विकसित कहते हैं। क्या आपको यह विरोधाभास नजर नहीं आता?” हम पढ़े-लिखे लोगों की दृष्टि में, दोष आ गया है। हम देखकर भी नहीं देखते। हमें तीर्थ यात्रियों, श्रद्धालुओं की गंदगी दिखलाई देती है, परन्तु शहर जो लगातार अपना मल-मूत्र, मैला-कुचला और फैक्ट्रियों का प्रदूषण, हमारी पवित्र नदियों और सागर में दिन-रात डालते रहते हैं, वह हमें नजर नहीं आता क्योंकि यह पश्चिम वालों को भी नजर नहीं आता। जिस दिन उनको नजर आने लगेगा, सम्भवतः उसके बाद हमें भी नजर आने लगेगा। विज्ञान और तकनीकी ने, इन तमाम आविष्कारों, चमत्कारों और चर्चा के बाद भी मनुष्य के मल-मूत्र को धरती में कैसे पचाया जाए, इसके कोई कारगर तरीके नहीं निकाले हैं। जो ग्रामीण खुले में शौच जाते हैं और जिनका मल धरती 24 घण्टे के अन्दर मिट्टी में परिवर्तित कर देती है, उनको हम सैप्टिक टैंक की लैटरिन में जाना सिखाकर सभ्य बनाने में लगे हैं। सैप्टिक टैंक में पड़ा मल-मूत्र जल्दी से सड़ता नहीं है, पर हम इसे देखकर भी अनदेखा करते हैं। महात्मा गाँधी के बाद इस गम्भीर विषय पर किसी बड़े आदमी ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। आज भी नदियों का प्रदूषण धार्मिक अनुष्ठानों की वजह से जितना होता है और शहर की गंदगी एवं औद्योगिक प्रदूषण से जितना होता है, इसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी धार्मिक अनुष्ठान करने वाले लोग हीन दृष्टि से देखे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हमारे ग्रामीणों और धार्मिक रीति-रिवाजों में संलग्न लोगों को गंदगी की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। परन्तु यहाँ बात पढ़े-लिखे लोगों के दृष्टि-दोष की हो रही है उन्हें क्या दिखलाई देता है और क्या दिखलाई नहीं देता।

लम्बे समय की गुलामी के बाद और विशेष तौर पर पिछले ढाई-तीन सौ सालों की गुलामी ने हमें पूरी तरह भ्रमित कर दिया है, जड़ से उखाड़ दिया है। आस्था एक गंदा शब्द हो गया है। आस्था और विश्वास अंधविश्वास के पर्याय बने गए हैं। सम्मान किसी की हाँ-में-हाँ मिलाने जैसा हो गया है या झूठी प्रशंसा का पर्याय हो गया है। निष्ठा (loyalty) तथा प्रतिबद्धता अंधभक्ति या चाटुकारिता हो गई है। इन सबको समझने की जरूरत है। आस्था और विश्वास, अंधविश्वास नहीं, हमारी धरोहर है। सम्मान, श्रेष्ठता का सम्मान, निष्ठा यह अंधभक्ति, चाटुकारिता, हाँ-में-हाँ मिलाना, चापलूसी नहीं है। भारत आस्था का देश रहा है। लम्बी गुलामी के बाद भी अगर इस देश की तुलना अन्य देशों से की जाए, जो लम्बे समय तक गुलाम रहे हैं, तो यहाँ अभी भी बहुत कुछ बचा है। अफ्रीका के देशों की तो बात ही अलग है, चीन भी अपने को बचा नहीं पाया है। क्योंकि उन्होंने अपने को अपनी जड़ों से काट दिया है या कट गए हैं। हमारी आस्था और हमारी परम्पराएँ, इन्होंने अभी भी हमें बचा रखा

है। हमारे देश के साधारण व्यक्ति के लिए, उस पर कितना ही शासन कर, दबाव क्यों न डाला जाए, उसकी आस्था एक बड़ी शक्ति में (शक्ति केन्द्रित सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले शासन से अलग) रहती है। राजा कोई भी हो, भारत के साधारण व्यक्ति के लिए असली राजा तो ऊपर वाला ही है। इसलिए उसे बाहर से कितना ही क्यों न दबाया जाए, अन्दर से उसे इस बड़ी शक्ति में भरोसा रहता है। इस बात पर भी कहीं-न-कहीं, भरोसा रहता है कि अन्त में सत्य की विजय होगी, चाहे कोई कितना भी गलत क्यों न करे। यह भावना या यह विश्वास, इस देश की बड़ी ताकत है। इसकी वजह से हजारों जुल्मों के बीच भी आदमी अपने को जिन्दा रख पाता है व आशावादी रह पाता है। वह टूटता नहीं। अपने दुःखों और कष्टों को झेल लेता है। भारतीय समाज के इस विश्वास की गहरी समझ महात्मा गाँधी में थी। तभी वे इतने बड़े जनमानस को खड़ा कर पाए। तभी पियर्सन जो कि 1907 में भारत आने के बाद जब वापस 1917 में आता है तो भारतीयों में हुए परिवर्तन को देखकर चौंक जाता है। 1907 के भारत में भारतीयों की यह हालत है कि अंग्रेजों के सामने बोलना तो दूर, आँखें नीची रखते थे, वे ही गाँधी जी के भारत आने के साल-दो साल बाद ही यानी 1917 तक, इतनी हिम्मत जुटा पाए कि अंग्रेजों से आँख मिलाकर ही नहीं, उनको दो चार बातें सुनाने लायक भी हो जाते हैं। भारतीय जनमानस में जो शक्ति गाँधी जी ने फूँकी, इसकी समझ हमारे पढ़े-लिखे वर्ग में न गाँधी जी के समय में थी, न ही आज है। गाँधी जी ने लोगों में छिपी, दबी पड़ी आस्था और ईश्वर में विश्वास का सहारा लेकर लोगों को खड़ा कर दिया। यह विश्वास आज भी आम आदमी में है लेकिन वह लगातार दबाया जा रहा है। इस आस्था के अनेक प्रतीक आज भी विद्यमान हैं, जिनमें भारत की पवित्र नदियाँ एक अहम भूमिका निभाती हैं और नदियों में सर्वोपरि है गंगा। ठीक उसी तरह जैसे पहाड़ों में हिमालय। महात्मा गाँधी लोगों में इस आस्था के बीज का सहारा लेकर उनमें शक्ति फूँकते थे, उससे पलट आधुनिक शिक्षा, सोच व तन्त्र अनजाने ही इस आस्था के बीज को कुचल कर लोगों को शक्ति हीन करने का प्रयास करते आया है। शक्तिहीन लोगों पर शासन करना आसान है, उन्हें हाँकना आसान है, उन्हें मारना भी आसान है। वे कठपुतली हो जाते हैं वे आशा विहीन होते हैं। आस्थाविहीन होने का मतलब ही है आशाविहीन होना। ऐसा व्यक्ति ज्यादा-से-ज्यादा, एक ‘कानून मानने वाला एक अच्छा नागरिक’ (जिसे कानून के सहारे कहीं भी हाँका जाया जा सके; जिसकी अपनी सोच कुछ भी न हो, जो पूर्णतः मीडिया में जो कुछ संचारित किया जा रहा हो, उस पर अंधविश्वास करे) बन सकता है। इस ‘अच्छे नागरिक’ की लालसा अमरीकी जीवन-शैली या चीनी जीवन-शैली की नकल करना हो सकता है। इस ‘अच्छे नागरिक’ को फिर अपनी ही जनसंख्या बोझ लगने लगती है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अमरीकी राष्ट्रपति को हमारी जनसंख्या बोझ लगती है। फिर इन्हें साफ-सुथरे मकानों और मोहल्लों में रहना तो

बहुत महत्वपूर्ण लगता है परन्तु उस सफाई को बनाए रखने के लिए जिन स्लमों में रहने वाले लोगों की जरूरत पड़ती है, वे आँखों से ओझल रहें, ऐसा उन्हें जरूरी लगता है। ऐसे विकास के सेवक वे बन जाते हैं। दुनिया और भारत को अगर बचाना है, तो आस्था को बचाना महत्वपूर्ण है; नहीं तो हम, एक आक्रामक और भयभीत समाज को पोषित करेंगे। आस्था की प्रतीक गंगा नदी है। इसमें अवरोध पैदा करना, इसको प्रदूषित करने के बराबर ही बड़ा अपराध है। लोगों की आस्था गंगा से जुड़ी है। गंगा में अवरोध आस्था को डगमगाएगा। आस्था डगमगाएगी तो हम बच नहीं पाएँगे। टिहरी बाँध से पहले ही बहुत बड़ा नुकसान हम कर चुके हैं। टिहरी से गंगा अविरल बहने वाली नदी न रहकर, एक ठहरी हुई, गमगीन व उदास झील में परिवर्तित हो गई है। जी. डी. चाहते हैं कम-से-कम उत्तरकाशी तक तो इस भागीरथी को मानव-हस्तक्षेप से दूर रखा जाए।

तिब्बत-नेपाल-भारत सीमा-प्रदेश
(भोट-नेवारी-प्राकृत-संस्कृत-पुरानी हिन्दी भाषाएँ)

सिद्ध सरहपाद कृत 'दोहा-कोश'

राजमल बोरा*

1

सिद्ध सरहपाद आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य के समकालीन थे। सरहपाद के गुरु शान्तरक्षित थे। शान्तरक्षित के कारण तिब्बत और भारत में सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। तिब्बत के सम्राट ने उन्हें आमन्त्रित किया। इसीलिए वे तिब्बत पहुँचे। तिब्बत में उन्होंने, वहाँ का प्रथम संधाराम बनवाया। बाद में वे तिब्बत में रह गए। आजीवन फिर वहीं रहे। 693 ई. से 793 ई. तक लगभग सौ वर्ष की आयु प्राप्त की। राहुल भद्र (सरहपाद का पूर्व नाम) उनके शिष्य थे और उनकी उपस्थिति में ही सरहपाद बन चुके थे। शान्तरक्षित के शिष्य हरिभद्र से भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। उस समय धर्मपाल (770-815 ई.) राजा थे। सरहपाद धर्मपाल के समकालीन थे।

2

दोहा-कोश का सम्पादन महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने किया है। इसका प्रथम संस्करण 1957 ई. में प्रकाशित हुआ और दूसरा संस्करण 1997 ई. में प्रकाशन बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद पटना से हुआ। इस सम्पादन में भोट-भाषा और हिन्दी छायानुवाद है। वस्तुतः सरहपाद का लिखा पाठ (या कहा पाठ) उपलब्ध नहीं है। सरहपाद की रचनाओं के अनुवाद तिब्बत की भोट भाषा में हुए हैं। तिब्बत की भोट भाषा में मूल रचनाएँ तो बिखरे हुए रूप में हैं। उनके अनुवाद समय-समय पर पुनः हिन्दी में हुए हैं। उस भाषा को अपभ्रंश कहा गया है अवहट्ट भी कहा गया है। ये अनुवादक भी एक नहीं हैं। इन बिखरे अनुवादों को मूल भोट भाषा के साथ राहुलजी ने सम्पादित किया है। इसे हिन्दी छायानुवाद कहा गया है। तदर्थ राहुलजी ने भोट भाषा सीखी और भोट भाषा को नागरी में लिपिबद्ध किया और ठीक उस पाठ के साथ हिन्दी छायानुवाद दिया। उस हिन्दी को आज की हिन्दी न कहकर सरहपाद की भाषा के निकट की भाषा अपभ्रंश तदनुसार अवहट्ट कहना चाहिए। बिखरी सामग्री को क्रम

* स्व. प्रोफेसर राजमल बोरा भाषा एवं साहित्य के जाने-माने विद्वान थे।

देने और भोट भाषा के साथ क्रम से प्रस्तुत करने में राहुलजी को बहुत श्रम करना पड़ा था। वह काम उन्होंने तिब्बत में रहकर किया था।

3

सरहपाद को तिब्बत में उनके जीवन काल में ही मान्यता मिल गई थी। अन्यथा उनकी रचनाओं को मान्यता नहीं मिलती। वे उड़ीसा के निवासी थे या बिहार की पूर्वी सीमा प्रदेश के निवासी थे। दोनों स्थानों के सम्बन्ध में मतभेद है। राहुलजी उन्हें बिहार बंगाल के सीमा प्रदेश का मानते हैं। वे ब्राह्मण परिवार के थे, संस्कृत जानते थे। छात्र के रूप में नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते थे और बाद में वे वहाँ अध्यापक भी हो गए थे। उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया और बाद में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। नालन्दा विश्वविद्यालय को छोड़ने के बाद में उन्होंने भ्रमण किया और बाद में तिब्बत भी गए। वहाँ उन्हें शान्तरक्षित का कार्य दिखलाई दिया। शान्तरक्षित को वे गुरु मानने लगे थे। उनके कार्य को उन्होंने तिब्बत में आगे बढ़ाया। लगता है, उनकी रचनाओं का अनुवाद भोट भाषा में, उन्हीं के समय में हो गया था और भोट भाषा का कार्य उन्होंने तिब्बत में रहकर किया।

4

शान्तरक्षित सातवीं शती के हैं और सरहपाद आठवीं शती के हैं। इनका नाम पहले राहुल था। बाद में वे सरहपाद हुए। नागार्जुन उनके शिष्य थे। वे दक्षिण में श्री पर्वत पर रहते थे। उसकी प्रसिद्धि सुनकर सरहपाद दक्षिण में गए और तीर बनानेवाली लड़की के साथ श्री पर्वत पर चढ़ गए। 'सर' का अर्थ तीर होता है। श्री पर्वत पर तीर बनानेवाले लड़की के साथ साधना करने के कारण वे सरहपाद कहलाए। कठोर साधना की और सिद्ध हो गए।

5

सरहपाद और गोरखनाथ के बीच में लगभग चार शताब्दियों का अन्तर है। सरहपाद के समय तक नालन्दा विश्वविद्यालय चलता था। बौद्धों का उत्कर्ष उनके समय तक टिका हुआ था। पश्चिम में इस्लामी शक्ति का उदय हो गया था और उनका आक्रमण आरम्भ हो गया था। ईरान से पारसी लोग भगाए गए। वे भारत में आ गए थे। अफगानिस्तान बौद्धों का उत्कर्ष स्थान था। संघाराम नष्ट हो रहे थे। वहाँ से जो छात्र नालन्दा आते थे, उनका आना बन्द हो गया था। सीमा प्रदेशों से बौद्धों को भगाया जा रहा था। सरहपाद पूर्व में थे। इसलिए मगध में विशेष अन्तर नहीं हुआ था और नालन्दा विश्वविद्यालय जैसे तैसे चल रहा था। दक्षिण भारत में नागार्जुन थे जो सरहपाद के शिष्य थे। बौद्धधर्म अन्य सीमा प्रदेशों में और बाहर विस्तार पाने लगा

था। भारत में केन्द्रीय शक्ति हर्षवर्धन की थी। उसका विघटन हो रहा था। नए-नए राजवंश उभर रहे थे। पालवंश, प्रतिहार वंश, राष्ट्रकूट वंश आदि शक्तियाँ उभर रही थीं। संस्कृत भाषा का उत्कर्ष हो गया था। इससे बौद्धधर्म को केन्द्र में स्थान नहीं मिला। वह सीमा-प्रदेशों में सिमटने लगा। बौद्ध आचार्य नेपाल और तिब्बत पहुँचने लगे थे और हिमालय की उपत्यकाओं में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष होने लगा। शान्तरक्षित को तिब्बत में आमन्त्रित किया किन्तु बाद में सरहपाद भी बढ़ गए और उन्होंने बहुत काम किया। भारत के सन्त वाङ्मय की नींव डालनेवालों में सरहपाद अग्रगण्य हैं। वे पहले बौद्ध आचार्य हैं जो हीनयान, महायान को छोड़कर नए यानों की ओर बढ़े। *मंत्रयान*, *वज्रयान* और *सहजयान* के नए प्रवर्तकों के रूप में उन्हें पहचाना जाता है। बौद्ध विचारों पर दृढ़ रहते हुए भी उन्होंने खण्डन के वाद-विवादों को प्रोत्साहन दिया। जैसे श्री शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहा जा सकता है।

6

सन्त वाङ्मय और निर्गुण वाङ्मय के प्रवर्तकों में सरहपाद का नाम लिया जा सकता है। यह काम आठवीं शताब्दी में आरम्भ हो गया था। यों तो सरहपाद को प्रधान रूप से वज्रयानी सिद्ध कहा जाता है। किन्तु वे सहजयानी भी हो गए थे। वे वज्रयान की कठोर साधना से परिचित थे किन्तु सब के लिए सहजयान को ही महत्त्व देते थे। वे बौद्धों की तरह पूरी तरह से अनात्मवादी नहीं थे। उनमें आस्था, अध्यात्म तथा आत्मसाधना के बीज मिलते हैं। उनके अध्यात्म ने उन्हें निर्गुणवादी बनाया। निर्गुणधारा को अन्ततः भक्ति से जोड़ा गया। नाथ पंथ ने इसी को आगे बढ़ाया। गोरखनाथ और नाथ सम्प्रदाय सिद्धों के बाद में हुए हैं। सिद्ध-पुरुष वस्तुतः साधना करने वाले रहे हैं। उनकी साधना पद्धतियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया था। सिद्धों को न बौद्ध कहा जा सकता है और न ही हिन्दू। कठोर योग साधना द्वारा वे आत्मा की ओर उन्मुख होते हैं। उनके आध्यात्मिक बल के कारण उन्हें सिद्ध कहा जाता है। ऐसे सिद्धों की संख्या चौरासी बतलाई जाती है। इन्हीं में से नाथ-सम्प्रदाय का उद्भव हुआ है। उनमेंमत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, मीननाथ, कानिपानाथ, चर्पटनाथ, ज्ञाननाथ, निवृत्तिनाथ आदि अनेक हैं। प्रथम नाम जालन्धर नाथ का है। इनकी संख्या नौ बतलाई जाती है। इन नामों का मेल सिद्धों की सूची में भी है। अलगाना कठिन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ-सम्प्रदाय पर उत्तम पुस्तक लिखी है। इस श्रम से सिद्धों पर उत्तम पुस्तक किसी ने नहीं लिखी। सिद्ध-साहित्य पर डॉ. धर्मवीर भारती की पुस्तक है किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। वाराणसी में डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कार्य को आगे बढ़ाया और बहुत पुस्तकें लिखीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी वस्तुतः शान्तिनिकेतन में दीर्घकाल तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहचर्य में रहे और सन्त वाङ्मय पर काम किया। इस कार्य की परिणति

में कबीर पर पुस्तक लिखी। आचार्य जी से पूर्व डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने इस विषय पर काम किया। निर्गुण धारा पर उन्होंने जो काम किया, उसे अधिक प्रशंसा नहीं मिली। किन्तु बड़थवालजी के कार्य की सराहना डॉ. रामविलास शर्मा करते हैं। बात यह है कि बड़थवालजी का प्रबन्ध अंग्रेजी में लिखा गया। इससे उनके कार्य की पहचान होने में देर लगी। बड़थवालजी ने 'गोरखवानी' पुस्तक लिखी है, जिसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने प्रकाशित किया है। सच्चाई यह है कि बौद्धों के हीनयान, महायान पीछे रह गए और उनकी परिणति में मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान नाम आगे आए और ये यान ऐसे हैं जो भक्ति वाङ्मय की निर्गुणधारा को आकार प्रदान करते हैं।

7

सरहपाद की समस्त उपलब्ध रचनाओं का संग्रह (ग्रंथावली कहिए) 'दोहाकोश' है। दोहों की संख्या अधिक होने के कारण *दोहाकोश* कहा गया है। और यह नामकरण अकेले इस संग्रह का नाम नहीं अपितु इसके साथ-साथ अन्य सिद्धों के संग्रहों के नाम हैं। *दोहा* छन्द अधिक लोकप्रिय है। यह *अपभ्रंश भाषा* का विशेष छन्द है। *श्लोक* कहने से संस्कृत भाषा, *गाथा* कहने से प्राकृत भाषा का जैसे स्मरण होता है, वैसे ही *दोहा* कहने से अपभ्रंश भाषा का स्मरण होता है और बाद में यह संत वाङ्मय का विशेष छंद हो गया।

8

अपभ्रंश-भाषा का नामकरण प्राकृत सदृश ही है, उसे भौगोलिक नाम नहीं कहा जा सकता। वह तो वास्तव में अर्द्धमागधी का विकसित रूप है। वह पूर्व की भाषा है। पश्चिम की भाषा नहीं है। नामकरण में भूगोल का ध्यान नहीं रखा गया है। उस क्षेत्र तक मगध का विस्तार रहा है। विद्यापति की भाषा को अवहट्ट भाषा कहा है। वस्तुतः अपभ्रंश भाषा स्तरीय भाषा से भ्रष्ट हुई भाषा को कहा गया है और किसी भी स्तरीय भाषा के भ्रष्ट रूप को अपभ्रंश कहा गया है। फिर वह वैदिक संस्कृत हो, लौकिक संस्कृत हो या प्राकृत और प्राकृत नामकरणों के अनुसार उनके अपभ्रंश रूप अलग-अलग हैं। अपभ्रंश-भाषा सामान्य और सर्वत्र (भारत में) प्रचलित किसी भाषा विशेष का नाम नहीं है। प्राकृत नाम जितना प्रचलित है उतना अपभ्रंश नाम नहीं है। वह है भी तो पश्चिमी भाषाओं का विकसित नाम है और विशेष रूप से प्राकृतों से जुड़े रूपों का नाम है। पूर्व की भाषाओं को अपभ्रंश नहीं कहा गया। और सच तो है कि राहुलजी ने अपभ्रंश का भौगोलिक विस्तार कर दिया और पूर्व भाषा को भी अपभ्रंश

कह सिद्धों और नाथों की भाषाओं को भी अपभ्रंश कह दिया। और फिर यह नेपाल तथा तिब्बत में पहुँची है और फिर यह भाषा तिब्बत से वापिस भारत पहुँची है, ठीक वैसे ही जैसे मागधी भाषा सिंहल देश से वापिस पालि में परिणत होकर भारत में पहुँची है।

9

सिद्धों ने मूल में बौद्धधर्म को बहुत परिवर्तित कर दिया है। न वह हीनयान ही रहा और न वह महायान रहा। उनकी भाषा बहुत बदली हुई है। उनकी भाषाओं में मन्त्रयान, वज्रयान और बाद में सहजयान के रूप मिलते हैं। इस भाषा की परिणति *कूट भाषा* के रूप में हो गई है, जिनके विशेष पारिभाषिक अर्थ हैं। और वे सब सिद्धों द्वारा प्रचलित किए गए हैं। तिब्बत की भोट भाषा में इनके *त्रिपिटक ग्रन्थ* मूल पालि के त्रिपिटक ग्रन्थों से मेल नहीं रखते। डॉ. यादव ने अपने शोध-प्रबन्ध के *वज्रयान सिद्ध सरहपाद* अन्त में परिशिष्ट में सिद्ध-साहित्य की, और विशेष रूप से सरहपाद के वज्रयान की पारिभाषिक शब्दावली की साधना-पद्धतियाँ दी हैं। वह सब सहज नहीं है। और ये सारी सामग्री सरहपाद की तिब्बती भाषा से हिन्दी के अनुवाद के रूप में है। तिब्बती त्रिपिटक को *श्री वज्रयान साधन* कहा गया है।

10

राहुल सांकृत्यायन से पहले सिद्ध साहित्य पर बंगला भाषा के लेखकों ने काम किया है। प्रबोध चन्द्र बागची ने *बौद्धयान* का सम्पादन किया है। म.म. हरप्रसाद शास्त्री ने बंगाक्षरों में *बौद्धयान* का सम्पादन किया है। यों सरहपाद की रचनाओं के संकलन राहुलजी से पहले भी छप चुके हैं। राहुलजी की तरह बाद में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी ध्यान गया। इस सन्दर्भ में उनकी *सहजयान* पुस्तक छप चुकी है। उन्हीं के शिष्य डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय इस कार्य को आगे बढ़ाकर आजीवन इसी विषय पर काम करते रहे हैं।

11

डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने *बौद्ध कापालिक साधना* और साहित्य (प्रकाशन 1983 ई.) पुस्तक लिखी है। उन्होंने *बौद्ध* शब्द का उपयोग किया है। कापालिकों के दो भेद अपने आप हो गए। *शैव कापालिक* तथा *बौद्ध कापालिक*। दार्शनिक चिन्तन में दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। साधना-पद्धतियों में भी तदनुसार अन्तर है। कोई भी हेक्का पालिक तो कापालिक है। उनके आचरण और चर्चाओं में भेद है।

तदनुसार पारिभाषिक शब्दावली भी अलग हो गई है। बौद्धों की कापालिक साधना पद्धतियों को अपनानेवाले 'वज्रयानी' कहलाए और उनमें सरहपाद का नाम सब से ऊपर है।

12

सरहपाद की रचनाएँ तिब्बत में तालपोथियों पर लिखी हुई मिलीं। इस सम्बन्ध में राहुलजी ने विस्तार से लिखा है। कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ

दोहाकोश-गीति की तालपोथी

“सन् 1934 ई. में मुझे तिब्बत के ऐतिहासिक मठ स. स्वयं में मिली थी। और जिसके अनुसार मैंने कोश को सम्पादित किया। इसकी प्राप्ति बड़े विचित्र ढंग से हुई। मैं भारत से गई तालपत्र की पोथियों की खोज में अपनी दूसरी यात्रा में 'स. स्वयं' पहुँचा। वहाँ तालपत्र की पोथियाँ थीं। खोज करने पर किसी ने कहा, वहाँ के एक मन्दिर के पुजारी के पास तालपत्रों का बण्डल है। मेरे चिरस्मरणीय मित्र और अब दिवंगत गेशे संघ धर्मवर्धन (गेन्दुन् छोफेल्) जाकर किसी तरह बण्डल को ले आए।

तिब्बत में भारत से गई तालपोथियों को बहुत पवित्र माना जाता है। मरणोन्मुख व्यक्ति के मुँह में यदि तालपोथी का धुला एक बूँद जल का पड़ जाए, तो उसके पाप धुल जाने में कोई सन्देह नहीं।...कौन-कौन से ग्रन्थों के कितने पत्रे इस प्रकार बँटे, इसे कौन बतला सकता है। महत्त्वपूर्ण पत्रों को फिर पुजारी के सुपुर्द करना मेरे बस की बात नहीं थी। पुजारी को कुछ दक्षिणा मिल गई, इसलिए उसने आपत्ति नहीं की। यद्यपि हस्तलेख में सन्-संवत् नहीं दिया हुआ है, पर लिपि दसवीं ग्यारहवीं सदी की कुटिला है। इस हस्तलेख का इतना ही महत्त्व नहीं है, बल्कि अभी तक सरहपा के इस दोहाकोश की जितनी प्रतियाँ मिलीं हैं, उनमें यह सबसे पुरानी है एवं दोहों की संख्या में भी सब से बड़ी है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने जिस प्रति को *बौद्ध गान ओ दोहा* में आज से 40 वर्ष पूर्व सम्पादित किया था, उसमें 50 के करीब दोहे थे। महाप्रस्थान के पथिक डॉक्टर प्रबोधचन्द्र बागची ने आज से 15 साल पहले जिस 'दोहाकोश' को प्रकाशित कराया था, उसमें दोहों की संख्या 112 थी। स्वयं तिब्बती में जो इसका अनुवाद मिलता है, उसमें दोहों की संख्या 135 है। जबकि इस तालपोथी में 164 है। तिब्बती अनुवाद इस प्रति से नहीं किया गया। वह उस प्रति का अनुवाद है, जिससे मिलती-जुलती प्रति डॉ. बागची द्वारा सम्पादित हुई। हमारी इस प्रति में 80 के करीब नये दोहे हैं, उधर डॉ. बागची की प्रति में भी 50 से अधिक नये दोहे हैं।” (पृ. 67-68)

13

दोहा कोश के अन्त में राहुलजी ने 'स.स्वयं' के तालपोथी के कुछ पृष्ठों के चित्र दिए हैं। सन् 1955 ई. में लिखी (भूमिका के अन्तिम पृष्ठ 79 पर) के अन्त में लिखा है

“जिस सामग्री का इस ग्रन्थ में उपयोग किया गया है, वह प्रायः सारी तिब्बत में प्राप्त हुई है। तिब्बत हमारी सांस्कृतिक निधियों का महान् संरक्षक है। हमारे अधिकारी विद्वानों को उनको देखने का बहुत कम अवसर मिला है... .. जिन सैकड़ों ताल पोथियों को मैंने *स.स्वयं*, *डो* और *गलू* में देखा, उनका पता तिब्बत के और जगहों के विद्वानों को ही नहीं था या बहुत कम था।... .. अब इन अज्ञात अंधेरी कोठरियों में बन्द अथवा तिब्बती हस्तलेखों के जंगल में सूई की तरह छिपी ताल पोथियों के भी प्रकाश में आने की सम्भावना है, जो कि किसी मूर्ति या स्तूप के उदर में हमेशा के लिए बन्द कर दी गई। जब वह बाहर आ जाएँगी, तो सिद्धों की कविता के रूप में *अपभ्रंश भाषा का बौद्ध साहित्य* प्रचुर मात्रा में हमारे सामने आवेगा।”

मसूरी 26-9-1955

राहुल सांकृत्यायन

14

राहुलजी ने *अपभ्रंश भाषा* मात्र नहीं कहा, उसे *बौद्ध अपभ्रंश* कहा। यह वैसे ही जैसे महाराष्ट्री प्राकृत के एक रूप को जिसमें जैन प्राकृत रचनाएँ थीं, इसलिए उसे मात्र महाराष्ट्री न कहकर *जैन महाराष्ट्री* कहा। ऐसा विभाजन भाषा के साथ उचित नहीं है। यह मात्र राहुलजी का कथन नहीं है। इससे पूर्व हरप्रसाद शास्त्री ने भी अपने संग्रह का नाम *बौद्ध गान ओ दोहा* दिया है। वस्तुतः *अपभ्रंश भाषा* (यदि भाषा का नाम है, तो) का नाम भाषा ही होना चाहिए। उसे *बौद्ध* या *जैन* कहना ठीक नहीं है। *अपभ्रंश भाषा* वस्तुतः पश्चिम की भाषा है और उसमें विपुल काव्य (प्रबन्ध और मुक्तक) लिखा गया है। वे प्रायः जैन साहित्य के अन्तर्गत है किन्तु *जैन महाराष्ट्री* की तरह किसी ने जैन अपभ्रंश नहीं कहा। यह सारी प्रवृत्ति संस्कृत के आचार्यों द्वारा चलाई गई है और इतिहास की भूल को ठीक करना चाहिए। लोक भाषा के रूप में इसे आठवीं-नौवीं सदी की *हिन्दी की प्राक् भाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए* और *यह पूर्व की भाषा है, जो बिहार से नेपाल पार करते हुए तिब्बत पहुँची है।*

15

सरहपाद ने नालन्दा विश्वविद्यालय का उत्कर्ष देखा था। वे स्वयं नालन्दा के छात्र रहे और बाद में अध्यापन का कार्य भी उसी विश्वविद्यालय में किया। अपने से पूर्व बौद्ध वाङ्मय के आचार्यों से उन्होंने बौद्ध वाङ्मय का अध्ययन किया। बौद्धों के

शास्त्र से परिचित थे। त्रिपिटकों से परिचित थे। और ये सब ग्रन्थ प्राकृत माध्यम से नहीं पढ़ाए जाते थे। माध्यम की भाषा संस्कृत हो गई थी। नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यापकों को और छात्रों को संस्कृत पढ़ना अनिवार्य था। लोक में लोकभाषाएँ प्रचलित थीं और संस्कृत सीखना आवश्यक समझा जाता था। उस समय तक लोक में लौकिक भाषा ने वैदिक भाषा को छोड़कर ज्ञान-विज्ञान की भाषा को संस्कृत (लौकिक संस्कृत) के रूप में अपना लिया था। इसीलिए मात्र तिब्बत में ही नहीं, अपितु चीन में भी बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार संस्कृत माध्यम से हुआ है। संस्कृत भाषा में जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के शास्त्रों का आगम हो या त्रिपिटक हो अनुवाद हो चुका था। मूल ग्रन्थ प्राकृत में उसकी संस्कृत छायातथा संस्कृत में उसकी टीकाएँ प्रस्तुत की गईं। इतना होने पर भी संस्कृत लोक भाषा नहीं हो सकी। वह शास्त्रों की भाषा हो गई। संस्कृत के साथ कोई विशेषण नहीं जुड़ाना हिन्दू, न जैन और न बौद्ध। वह विशुद्ध रूप से ज्ञान-विज्ञान की भाषा रही है। आज भी प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की एक मात्र भाषा संस्कृत भाषा है और वह भारतीय भाषाओं में सब से घुलमिल गई है। वह स्थान भारत में आज अंग्रेजी को तो मिल गया है हिन्दी को नहीं मिला है। परिवर्तन की प्रक्रिया जारी है।

16

गौतम बुद्ध और उससे पूर्व वैदिक भाषा का प्रचलन अधिक था। मेरा अनुमान है कि तक्षाशिला में वैदिक भाषा के साथ-साथ संस्कृत का प्रचलन रहा है। प्रधान रूप से वैदिक भाषा अधिक प्रचलित हो और वहाँ की संस्कृत को उदीच्य कहा जाता था। नालन्दा की संस्कृत वैदिक भाषा न होकर मात्र संस्कृत थी और उसे प्राच्य कहा जाता था। संस्कृत के ये दोनों रूप ही भौगोलिक रूप से प्रचलित हुए प्रतीच्य और दक्षिणात्य रूप हों भी तो प्रचलित नहीं हुए। ये नामकरण दिशासूचक हैं, भौगोलिक नहीं हैं। बौद्ध जातकों में तक्षाशिला का नाम जगह-जगह मिलता है।

17

सरहपाद के समय में संस्कृत भाषा उत्कर्ष पर थी और नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यापक और छात्र संस्कृत पढ़ते थे। माध्यम वही था। बौद्धों के सिद्धान्त और उनके शास्त्र संस्कृत में उपलब्ध थे। फाहियान जब आया तो उसे धम्मपद नहीं मिला तो वह सिंहल देश उसी ग्रन्थ की खोज में गया। अपने साथ वह बौद्धों के त्रिपिटक वाङ्मय के संस्कृत अनुवाद को लेकर गया। आचार्य रघुवीर (डॉ. लोकेशचन्द्र के पिताजी) ने चीन की यात्रा नेहरू जी के समय में की थी। उस समय उन्हें संस्कृत के

अनूदित प्राचीन ग्रन्थ देखने को मिले। प्राकृत भाषा का कोई ग्रन्थ उन्हें नहीं मिला। तिब्बत में भी इसी तरह संस्कृत भाषा पहुँची है। सिंहल के पाली ग्रन्थ भारत में आए और यहाँ से म्यांमार (बर्मा) में भी पाली में पहुँचे हैं। तदर्थ म्यांमार देश के राजा ने उन ग्रन्थों को पाने के लिए आक्रमण किया था।

18

सरहपाद ने अपनी रचनाएँ (संस्कृत तथा प्राकृत जानते हुएपाली जानते हुए भी) पूर्वी प्राचीन हिन्दी में कहीं और रचीं। उनकी रचनाओं का संकलन तिब्बत में किया गया। उनकी रचनाएँ भारत में रची गईं। रचनाओं में तिब्बत का कहीं उल्लेख नहीं है। किन्तु उनकी रचनाएँ पुरानी हिन्दी की रचनाएँ हैं। उन्हें संस्कृत की परम्परा की अपभ्रंश रचनाएँ कहना ठीक नहीं है। उस समय यह हिन्दी बिहार तथा बंगाल के सीमा क्षेत्र में प्रचलित थी इसलिए कह रहा हूँ कि सरहपाद की रचनाओं पर पहले कार्य बंगाल में हुआ है और रचनाओं को बंगाक्षरों में प्रकाशित किया गया है। सरहपाद की रचनाएँ हिन्दी में जब आचार्य शुक्ल इतिहास लिख रहे थे, उस समय तक प्रकाशित नहीं हुई थी। तब आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में सरहपाद को सबसे पुराना कवि कहते। पश्चिमी हिन्दी में अमीर खुसरो का नाम है, ठीक उससे बहुत पूर्व सरहपाद आठवीं शती के कवि हैं। उन्हें अपभ्रंश का कवि मानना ठीक नहीं है। तदर्थ राहुलजी की पुस्तक से ही एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ

ऊँचा-ऊँचा पावत तहिं बसइ सबरी वाली ।
मोरङ्गी पिच्छि प(हि) रहि सबरी गीवत गुजरी माला ।
ऊमत सबरो पागल सबरो, मा कर गुली-गुहाडा ।
तोहारि णिअ धरिणी सहज सुन्दरी ।ध्रु ।
णाणा तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली ।
एकली सबरी ए वन हिण्डइ, कर्णकुण्डल वज्रधारी ।
तिअ धाउ खाट पडिला सबरो, मह सुह सेज्जि छाइली ।
सबरो भुजंग णइरामणि दारी, पेक्ख(त) राति पोहाइली ।
हिए ताबोला महासुहे कापुर खाई ।
सून निरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई ।
गुरु वाक पुंछआ बिन्ध णिअ मणे बाणें ।
एके शर-सन्धानें बिन्धह बिंधह परम णिहाणें ।
उमत सबरो गुरुओ रोषे,
गिरवर सिहर सन्धि पइसन्ते, सबरो लोडिव कइसे ।

राहुलजी ने सरहपाद को रहस्यवादी कहा है। दूसरी बात, सरहपाद की भाषा में (काव्य में) प्रतीकों का प्रचुर उपयोग हुआ। ऊपर उद्धृत गीत के काव्यार्थ और रहस्यवादी अर्थ उन्होंने अलग-अलग दिए हैं। मैं दोनों ही अर्थ उद्धृत कर रहा हूँ

“काव्यार्थ : ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर शबर-बालिका बैठी है, जिसके सिर पर मोर-पंख और ग्रीवा में गुंजा की माला है। इसका प्रिय शबर प्रेम में उन्मत्त पागल है। ओ शबर, तू हल्ला-गुल्ला मत कर। तेरी अपनी (निज) गृहिणी सहज सुन्दरी है। उस पर्वत पर नाना प्रकार के तरुवर फूले हुए हैं जिनकी डालियाँ गगन से लगी हुई हैं। कान में कुण्डल-वज्र धारे शबरी अकेली इस वन में घूम रही है। दौड़कर खाट पर महासुख-सेन पर शबर पड़ गया। शबर भुजंग (विट) और नैरात्म्य (शून्यता) वैश्या (दारी) को देखते रात बीत गई। हृदय तांबूल को महासुख-रूपी कपूर (के साथ) खा, शून्य नैरात्मा को कण्ठ लगा महासुख में रात बीत गई। गुरु-वचन पूछकर निज मन-रूपी बाण से वेधएक ही शर-सन्धान से बेध-बेध परम निर्वाण को...”

इस अर्थ पर टिप्पणी करते हुए रहस्यात्मक अर्थ को यों लिखते हैं

“इसके अधिक भाग में शबरी बालिका, उसके तरुण प्रेमी शबर तथा उनके मनोहर पर्वत-वन-निवास का सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन है। यदि कुछ विशेष सांकेतिक शब्दों पर ध्यान न दिया जाए, तो यह एक श्रृंगारी कविता है। हरेक पाठक उन सांकेतिक शब्दों की ओर ध्यान देने के लिए मजबूर भी नहीं है। यहाँ शबरी से सन्तों और सरह के यहाँ भी सुरति (तल्लीनता) अभिप्रेत है। उसका प्रेमी शबर साधक है। बुद्ध के मुख्य सिद्धान्तजो है, वह सब क्षणिक हैके अनुसार जगत् और उसके किसी पदार्थ के अन्तस्तल में भी कोई नित्य पदार्थात्मा या ब्रह्मनिहित नहीं है। सभी आत्म-रहित निरात्म या नैरात्म्य, नइरामणि है। उसी नैरात्म्य तत्त्व-शून्यता को साक्षात् करना है। उसी ‘णइरामणि दारी’ का भुजंग हरेक साधक विलासी को बनना है। उसका साक्षात्कार महासुख की अनुभूति है, जिसे योगी ध्यानमग्न हो प्राप्त करता है।” (दोहाकोश, भूमिकापृ. 24-25-26।)

19

इस गीत में श्रृंगार माध्यम है। रहस्यात्मक अनुभूति की प्रतीति के लिए श्रृंगारी माध्यम अपनाया गया है। साधना कठोर है और वह वज्रयानी है। ऐसी प्रतीकात्मक शब्दावली का उपयोग सरहपाद के गीतों में, दोहों में, और अन्य रचनाओं में जगह-जगह है। लौकिक अर्थ समझने के लिए है किन्तु उनमें अलौकिक कथन निहित रहता है और यहीं रहस्यवाद है। सरहपाद हिन्दी के प्रथम रहस्यवादी कवि हैं। इस विशेषता के कारण उनका रहस्यवाद आत्मज्ञान में सहायक है। यह आत्मज्ञान बौद्ध-नियमों के आचरण में होते हुए भी बौद्ध मर्यादाओं का उल्लंघन भी करता है। है तो यह कठिन और सब कुछ साधक और उसकी साधना पर निर्भर है। इस साधना-पद्धति को

वज्रयानी कहा गया है। इस साधना-पद्धति में गुरु को महत्त्वपूर्ण माना गया है। सद् गुरु सब को नहीं मिलतेइसलिए यह साधना अपने मूल रूप में विस्तार नहीं पा सकी किन्तु उसके अनेक रूप प्रचलित हो गए। यह लम्बा इतिहास है।

20

सरहपाद तो अन्त तक बौद्ध बने रहे और सिद्ध बने रहे। उनकी परम्परा में 84 सिद्ध बतलाए जाते हैं, जिनमें लुइपा, कृष्णपाद आदि प्रमुख हैं। सब की सूची राहुल जी ने दी है। डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने कृष्णपाद पर विशेष कार्य किया। उन्होंने कृष्णपाद की रचनाओं का संग्रह तैयार किया किन्तु उसकी पाण्डुलिपि उनके पास पड़ी रही। हाँ, उन्होंने एक पुस्तक 1989 ई. में प्रकाशित (संजय प्रकाशन, वाराणसी) की। दूसरे ही वर्ष में 22 जून 1990 को वाराणसी में उनके निवास स्थान पर पहुँचा। उन्होंने मुझे ‘बौद्ध अपभ्रंश कवि कृष्णपाद’ पुस्तक दी। और बतलाया कि ‘कृष्णपाद की रचनावली’ पुस्तक तैयार है। रचनावली में क्या क्या है, यह सब मुझे दी गई पुस्तक पर लिख दिया। वह इस प्रकार है

- कृष्णपाद के चर्यापद 12 अपभ्रंश + 1 संस्कृत
- कृष्णपाद की वज्रावली
- ‘वसन्त तिलकम्’ के आधार पर
- अपभ्रंश की रचनाएँ पाठ्यभेद और भाष्य लिखा है
- चर्यापद ” ” ”

300 पृष्ठों की पुस्तक होगी। उनकी दो और पुस्तकें प्रकाशन से रह गई हैं? वे हैं

- चर्यापद विमर्श और
- कबीर विमर्श और विमर्श।

21

चाहूँगा कि सरहपाद के ‘दोहाकोश’ की टीका कोई अधिकारी विद्वान् लिखे। टीका के आधार पर सरहपाद और उजागर होंगे। महापण्डित राहुल कितना काम करते? उन्होंने अलग-अलग क्षेत्रों पर विपुल कार्य किया है। दोहाकोश में सरहपाद की उपलब्ध रचनावली का विभाजन उन्होंने किया है। उन्होंने तिब्बत की भोट भाषा सीखी और तिब्बत के मठों में उपलब्ध सामग्री को एकत्रित किया, भोट सामग्री में सरहपाद की रचनाओं के अनुवाद भी मिले। उनके अनुवाद पुनः हिन्दी में सरहपाद के बाद में समय-समय पर बौद्ध आचार्यों ने प्रस्तुत किए हैं। राहुलजी ने भोट भाषा में सरहपाद की रचनाओं को उसी लिपि में प्रस्तुत किया है और उक्त भोट में अनूदित रचनाओं के ठीक सामने उनके हिन्दी अनुवादों (अनुवादों का अनुवाद) को भी दिया है। मूल सरह के दोहे तो आरम्भ में पृ. 1 से 35 तक कुल 165 हैं। तदनुसार आगे

जो रचनावली दी है, उसमें भोट भाषा और उनका हिन्दी छायानुवाद है। यह छायानुवाद राहुलजी का नहीं अपितु तिब्बत के ही सरहपाद के शिष्य परम्परा के आचार्यों का है। ज्ञात नाम रचनाओं के अन्त में हैं। इस तरह रचनावली को 16 (सोलह) विभागों में विभाजित किया गया है।

22

रचनावली का क्रम

रचनावली का क्रम इस प्रकार है

1. (क) *दोहाकोश-गीति* हिन्दी छाया-सहित।

सरहपाद के भाषा के मूल रूप इसी दोहाकोश-गीति में हैं।

(ख) *दोहाकोश-गीति* भोट अनुवाद और मूल।

भोट अनुवाद के साथ मूल रूप दिया गया है।

इसमें कुल 134 दोहे हैं। इन 134 दोहों के अन्त में संख्या 112 है। और अन्त में लिखा है

इति महायोगीश्वर महासरह के श्री मुख से रचित दोहा कोश.. समाप्त॥

2. *दोहाकोश चर्यागीति* (भोट, हिन्दी)

इसमें कुल 38 गीत हैं। और लिखा है

इति महायोगीश्वर महासरह के श्रीमुख से रचित...समाप्त॥

यह छायानुवाद है। अनुवादक का नाम नहीं दिया है।

चर्यागीत : चर्यागीतों में अनुष्ठान तथा आचरण की अभिव्यक्ति है। ये गीत गाए जाते रहे हैं और सरहपाद से पहले भी प्रचलित रहे हैं। इस सम्बन्ध में राहुल जी का कहना है, “सरह वज्रयानी चर्याओं के प्रवर्तक थे, यह कहना मुश्किल है। उन्होंने अपने ‘दोहाकोश गीति’ के आरम्भ में ही इस तरह के अनुष्ठानों और विश्वासों का खण्डन किया, जिसमें स्थविरों और महायानियों को नहीं छोड़ा है। यदि वह स्वयं चर्याओं के प्रवर्तक या समर्थक होते तो यह वदतो व्याघात होता। (भूमिका, पृ. 69)। सच तो यह है कि ये गीत नेपाल में तथा तिब्बत में लोकप्रिय थे और गाए जाते थे। नेपाल की *नेवारी भाषा* में ये गीत गाए जाते थे। लगता है, नेपाली से पहले ये गीत नेवारी में प्रचलित थे। तिब्बत में भोट भाषा में गाए जाते थे। नेपाल में इन्हें चर्या गीत न कहकर *चचा* गीत कहा जाता था। चचा का अर्थ चर्या ही है। ऐसे वज्र चर्या के गीत भी प्रचलित हो गए और सरहपाद के बाद में भी चलते रहे। इन चर्यागीतों

या चचा गीतों का अब लोप होता जा रहा है। राहुलजी लुप्त होती परम्परा को ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान मानते हैं। इस नाते भारत की संस्कृति नेपाल और तिब्बत में काफी समय तक सुरक्षित रही है।

23

3. *दोहाकोश उपदेश गीति* (भोट-हिन्दी) : इसमें कुल 80 दोहे हैं। और अन्त में लिखा है

इति अनुत्तर सार निर्णय दोहाकोश नाम योगीश्वर श्री सरहकृत समाप्त। भारतीय पण्डित वज्रपाणि औ गुरु असु द्वारा अनुवादित।

4. *क. ख. दोहा* (भोट-हिन्दी) : इसमें वर्णमाला के क्रम से दोहे दिए गए हैं। मूल तो अनूदित भोट भाषा में है और अनुवाद का अनुवाद हिन्दी छायानुवाद के रूप में है। वर्णमाला क्रम लिख रहा हूँ

क-का / ख-खा / ग-गा / घ-घा / ङ-ङ / च / छ / ज / झ / स्कब्स् / (अनुवाद में च-चा / छ-छा / ज-जा / झ-झा / इसके बाद ज् वाला रूप नहीं है। ट-टा / ठ-ठा / ड-डा / ढ-ढा / ण-णा / त-ता / थ-था / द-दा / ध-धा / न-ना / प-पा / फ-फा / ब-बा / भ-भा / म-मा / य-या / र-रा / ल-ला / व-वा / श-शा / ष-षा / स-सा / ह-हा / कुल 33 वर्ण माला है और अन्त में क्ष-क्षा। भोट की वर्ण माला में भी यही क्रम है और उसमें उनका उच्चारण भिन्न होने के कारण विशेष चिह्नों का उपयोग किया गया है।

अन्त में लिखा है इति क-ख दोहा महायोगीश्वर श्री महान् ब्राह्मण, दक्षिण कोसल देश-जन्मा गुरु महायोगी वैरोचन वज्र के मुख से कथित स्व-अनुवाद।

5. *कायकोश अमृत वज्र गीति* (भोट-हिन्दी) : इसमें 127 अमृतवज्र गीति हैं। भोट और हिन्दी छायानुवाद में अलग-अलग हैं। आमने-सामने हैं। अन्त में लिखा है

इति सरह श्री मुख से कथित कायकोश ‘अमृत वज्र गीति’ समाप्त। अनुवादक का नाम नहीं दिया है। इसके उपशीर्षक मात्र लिख रहा हूँ

1. नाना मत 2. सहजयोग महामुद्रा (संख्या तीन छूट गया है) 4. ध्यान महामुद्रा 5. सहज चित्र महामुद्रा 6. त्रिकाय, त्रिमुद्रा 7. सहज महासुख 8. मुद्रा महामुद्रा 9. शून्यता, महासुख। ये शीर्षक प्रतीकात्मक तथा सांकेतिक हैं।

6. *वाक् कोश मंजुघोष वज्रगीति* (भोट-हिन्दी) : इसमें 48 वज्रगीति हैं। अन्त में अनुवादक का नाम नहीं है लिखा है इति सरह कथित ग्रन्थ-कोश ‘मंजुघोष वज्रगीति’ समाप्त।

7. चित्त कोश 'अजवज्र गीति' (भोट-हिन्दी) : ये संख्या में 25 हैं। 26 के अन्तर्गत लिखा है
26. गुरु आचार्य आगम औ प्रकर्ष से, दो मनुष्य द्वारों जगत् मुक्त हो। इति चित्त कोश 'अजवज्र गीति' गुह्य सारार्थ श्री सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त॥
8. काय-वाक्-चित्त-अमन सिकार (भोट-हिन्दी) : आरम्भ में नमोऽप्रतिष्ठित निमित्ताव । नमो वज्रधराय लिखा है । इससे पूर्व में रचनाओं में आरम्भ में प्रायः 'लमो भगवते थेरुकाय, नमोमंजुश्रिये कुमार भूताय' लिखा है । चर्या गीति के आरम्भ में नमोमंजुश्रिये । नमो मारबल विध्वंसिने । इसमें 91 'काय वाक् चित्त अमन विकार' के गीति हैं । अन्त में लिखा है

॥इति काय वाक् चित्त अमन सिकार महामुद्रा (उपदेश) द्वितीय बुद्ध जिमि प्रसिद्ध महायोगीश्वर श्री सरह के मुख से श्रीमुख से भाषित समाप्त॥ गुरु कृष्ण ने स्वयं अनुवादित किया । म (ह) य समाप्त मिति॥

9. दोहाकोश महामुद्रोपदेश (भोट-हिन्दी) : आरम्भ में 'नमो वज्रयोगिन्दे । नमः सहजज्ञान धर्म काय महामुखाय । लिखा है । इसमें 44 दोहे हैं । अन्त में .
.....
॥ इति दोहाकोष महामुद्रोपदेश महाशबर सरह के श्रीमुख से रचित समाप्त॥ भारत के उपाध्याय श्री बैरोचन रक्षित ने स्वयं अनुवादित किया॥

24

10. द्वादश उपदेश गाथा (भोट और हिन्दी) : इसमें 17 उपदेश गाथाएँ हैं । द्वादश नहीं । अन्त में लिखा है
॥ इति द्वादस-उपदेश गाथा, महान् ब्राह्मण सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ॥
11. स्वाधिष्ठान-क्रम (भोट और हिन्दी) : आरम्भ में नमो वज्रसत्त्वाया॥इसमें 16 छन्द है । अन्त में लिखा है
॥ इति योगीश्वर श्री महासरह-कृत स्वाधिष्ठान क्रम साधना समाप्त ॥ महापण्डित प्रशान्तभद्र के श्रीमुख से भोट के लो.च.ब (लोकचक्षु=अनुवादक) र्म वज ॥ छोस्. बर द्वारा अनुवादित पूछ कर निर्णीत॥
12. तत्त्वोपदेश शिखर दोहागीति (भोट और हिन्दी) : आरम्भ में नमो आर्य मंजुश्रियै॥ इसमें 25 दोहे हैं । और अन्त में अनुवादक का नाम लिखा है॥इति महायोगीश्वर श्री सरह के श्रीमुख से भाषित 'महामुद्रातत्त्वोपदेश शिखर' दोहा गीति समाप्त॥ कृष्ण पण्डित द्वारा स्वयं अनुवादित॥

13. वसन्ततिलक दोहागीति (भोट-हिन्दी) : इसमें कुल 6 दोहे हैं । आरम्भ में 'नमः श्री हेरुकाय' । लिखा है । और अन्त में॥इति आचार्य कृष्ण-परम्परा से 'वसन्त तिलक' दोहाकोश गीति आचार्य सरह कृत समाप्त॥
14. महामुद्रोपदेश वज्रगुह्य गीति (भोट और हिन्दी) : आरम्भ में नमो भगवत्यै प्रजापारमितायै॥ लिखा है । कुल 135 वज्रगीति है । और अन्त में लिखा है । ॥इति योगीश्वर श्री सरहमुख कथित 'महामुद्रोपदेश' 'वज्रगुह्य गीति' नाम समाप्त॥ ॥भारतीय आचार्य कमलशील और भोट के वन्दनीय लो.च. (लोकचक्षु) वश.म. स्वामी सिंहाराज अनुवादित लिखकर निर्णीत॥
15. चत्तगुह्य दोहा (भोट और हिन्दी) : आरम्भ में नमोमंजुश्रियै कुमार भताया॥ इसमें कुल तीन (1+2) दोहे हैं । लिखामहान् ब्राह्मण सरह ने करुणायुक्त (यह) अवबोध गीत रचा । उक्त गीत के बाद में दो और गीत हैं । कहासरोरुह वचने । और अन्त में 'इति कहा'

25

“दोहा, चौपाई के अतिरिक्त सरहपाद ने कितने ही गीत भी रचे हैं, जिनकी संख्या काफी अधिक रही होगी, पर हमारे पास तक उनमें से थोड़े पहुँचे । गीतों के साथ उनके रागों को भी दिया गया है, जिससे यह भी पता लगता है कि यह परिपाटी ईसा की आठवीं सदी में भी प्रचलित थी । राग गुंजरी शायद गुर्जरी है, भैरवी आज भी एक प्रसिद्ध रागिनी है, मालसी मालव भी है, देशास्त्र भी एक पुराना राग था! भूमिका में हम बतला चुके हैं, कि सरह के साथ हमारे साहित्य में बहुत-से नए तत्व प्रविष्ट होते देखे जाते हैं । क्या इसी (अपभ्रंश) काल से राग-रागिनियों की परिपाटी तो शुरू नहीं हुई?... ..

...बोधिचर्या की तरह सिद्धचर्या या वज्रयानचर्या भी रही है । चर्या का अर्थ आचरण, अभ्यास या अनुष्ठान है; दिनचर्या कहते हम उसी भाव को हिन्दी में देखते हैं । नेपाल के बौद्ध अपनी गुप्त पूजा को 'चर्या' या 'चचा' कहते हैं, जिसमें ये पद गाए जाते हैं । इसीलिए इन्हें 'चर्या-पद' कहा गया । महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित चर्यापदों में चार सरहपाद के हैं ।”पृ. 356 ।

26

भूमिका से अलग दोहा कोशावलि 369 पृष्ठों में है । इनमें प्रथम रचना और अन्तिम रचना को छोड़कर शेष 14 रचनाओं में भोट और हिन्दी छायानुवाद के पृष्ठ आधे-आधे हैं । 14 रचनाओं का आधार भोट भाषा में सरह की रचना प्रथम दी गई है और उनके

सामने ही अनुवाद का अनुवाद है। सभी अनुवादकों के नाम उपलब्ध नहीं हैं। राहुलजी को जहाँ अनुवादकों का नाम मिला, वहाँ नाम दिया है।

27

अनूदित हिन्दी छायानुवाद की भाषा एक समान नहीं है। देश काल का प्रभाव इन अनुवादों में दिखलाई देता है और फिर ये रचनाएँ छन्दोबद्ध न होकर अर्थ के द्योतक हैं और इनमें संस्कृत तत्सम रूपों का प्रयोग अधिक दिखलाई देता है। अनुवाद आठवीं सदी के बहुत बाद में सत्रहवीं-अठारहवीं सदी तक (लगभग एक हजार वर्ष तक) होते रहे हैं। किसी भी अनुवादक का समय ज्ञात नहीं है। हाँ, हम इतना कह सकते हैं कि भोट भाषा के अनुवाद सरहपाद के समय के या उसके बाद की शिष्य परम्परा ने तुरन्त कर दिए हों। तिब्बत और भारत के बीच में नेपाल है। इसलिए नेपाल की प्रधान बोली नेवारी में भी सरहपाद के 'चचा' गीत प्रचलित हो गए थे। और गाए जाते थे। संभवतः नेवारी के 'चचा गीत' सरह के चर्यापदों (मूल) से अनूदित हुए हों। वे भोट के माध्यम से अनूदित न हुए हों।

28

सरहपाद की रचनाओं की पारिभाषिक शब्दावलि अलग है और वह सब संस्कृत में है। वज्रयानी सिद्धान्तों की पारिभाषिक शब्दावलि संस्कृत है। रचनाओं की तालिका ऊपर दी गई है, उनमें नामकरण संस्कृत में है। आरम्भ में दोहावलि में जो उपशीर्षक दिए गए हैं, वे भी संस्कृत में हैं

1. षट् दर्शन खण्डन 2. करुणा सहित भावना 3. चित्त (3.1) परमपद, (3.2) सहज, महासुख, (3.3) परमपद 4. भावना, (4.1) शून्यता, (4.2) भोग में योग, (4.3) भ्रान्त पथ, (4.4) सहज भावना, (4.5) सहज समरस भाव (5) यहीं सब कुछ (5.1) देह ही तीर्थ, (5.2) जग में ही सुखसार (6.) सहज यान (6.1) सहानुभूति (6.2) चित्त देवता, (6.3.) भव निर्वाण एक, (6.4) परमपद क. शून्य निरंजन, ख. धरम धारणादि व्यर्थ, (6.5) परमपद-साधना।

आरम्भ में षट्-दर्शन खण्डन में केवल चार शीर्षक हैं ब्राह्मण, पाशुपत, जैन और बौद्ध। इनमें ही षट्-दर्शन मान लेना चाहिए। लगता है, ये सारे शीर्षक स्वयं राहुलजी द्वारा दिए गए हैं।

सरहपाद की मूल भाषा

सरहपाद की मूल भाषा दोहाकोश में दिखलाई देती है, वह आरम्भ में, दोहाकोश की मूल गीति में है। उसके सामने उसी का हिन्दी में छायानुवाद है। इसके बाद अन्तिम

सोलहवीं रचना 'सरह के पद' दिए गए हैं और जो महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के आधार पर दिए गए हैं। उन पदों की भाषा को सरह की भाषा कह सकते हैं। शेष रचना तो भोट भाषा में है और उनके हिन्दी छायानुवाद हैं। तरह के दोहे या पद मूल सरह के होने पर शिष्य-परम्परा में श्रवण के माध्यम से आगे बढ़े हैं और शिष्य-परम्परा ने उन्हें श्रुत-परम्परा में सुरक्षित रखा है। सरह की अन्य रचनाएँ तो भोट भाषा में अनूदित होकर सुरक्षित रही हैं। इस मूल भाषा के आधार पर ही लिख रहा हूँ।

दोहा संख्या (29)	मूल दोहाकोश-गीति इन्दी जत्थ विलीअ गउ णट्टो अप्प सहाव तणु, फुड पुच्छह गुरु पाव	दोहाकोश-गीति (छाया) इन्द्रिय यत्र वि लीन गउ नष्टो आत्मस्वभाव तनु, फुर पूछहु गुरुपाद
---------------------	--	--

एक ही दोहे की भाषा में इतना भेद है। सुविधा के लिए पूरे दोहों को लिख रहा हूँ

- मूल : इन्दी जत्थ विलीअ गउ, णट्टो अप्प सहाव।
सो हलें सहजानन्द तणु, फुड पुच्छह गुरुपाद ॥29॥
छाया : इन्द्रिय यत्र विलीन गउ, नष्टो आत्मस्वभाव।
सो री सहजानन्द तनु, फुर पूछह गुरुपाद॥29॥
और दो दोहे मूल और छाया सहित लिख रहा हूँ

॥ मूल ॥

- जइ पुणु अह-णिसि सहज पइट्टइ। अमणा गमण जें तहि णेवाट्टइ॥
39. भावाभावे वेण्णि न कज्ज। अन्तराल ट्ठिअ पाडहु बाज्ज।
विविह पआरें चित्तवि अपिव। सोवि चित्तण केणिव अपिव।
40. इन्दी विसअ उ असंठ्ठा उ, सएणं सम्भिलिए जत्था।
णिअ चित्तन्ते काल गउ, ज्ञाण महासुह तत्था॥

॥छाया॥

40. यदि पुनि अहणिसि सहज पईसै। अचनागमन जे न्ह निवर्ते॥
39. भाव अभाव न दोनेहु कार्य। अन्तराय स्थित पातहु बाज्ज।
विविध प्रकार चित्त उ अर्पिय। सोउ चित्त न काहु न अर्पिय।
40. इन्द्रिय विषयउ न स्थाय, स्वसंवित्तियं यत्र।
निज चित्तान्तर काल गउ, ध्यान महासुख तत्र॥

मूल हो या छाया हो दोनों का उपशीर्षक 'सहज महासुख' है। और ये शीर्षक स्वयं राहुलजी का दिया हुआ है। मूल भाषा वास्तव में अर्धमागधी प्रतीत होती है। यद्यपि वह आगमों की भाषा नहीं है। काल का अन्तर है और लगता है सरहपाद के समय तक अर्धमागधी किसी तरह व्यवहार में प्रचलित रही है। अर्धमागधी में मागधी तदनुसार पालि भाषा में मूर्द्धन्य ध्वनियों का अधिक प्रचार नहीं रहा है। अर्धमागधी गूर्द्धन्य अनुनासिकआरम्भ में मध्य में तथा अन्त में भी मिलते हैं। दूसरी बात शकार बहुल न होकर अर्द्धमागधी सकार बहुल है। दोहाकोश के 110 दोहे में मूल में दोहाकोस है। इसके विपरीत छाया में दोहाकोश है। उक्त दोहा के दोनों रूप लिख रहा हूँ

॥मूल॥

111. गहि गुण धम्म संसार अहवा सत्थत्थ णिअत्थणें ।
तहि भसिअ दोहाकोसं तत्थ च्विअकन्धअं समत्तां।

॥छाया॥

111. गहि गुण धर्म संसार अथवा शास्त्रार्थ निजस्थाने ।
तहं भाषेउ दोहा कोश, तत्त चित्त स्कंधकं समाप्तां।

30

सरहपाद, जैसे कि हम जानते हैं, प्राकृत भाषा और बौद्ध वाङ्मय से परिचित थे। संस्कृत के पारंगत विद्वान् थे। चाहते तो संस्कृत में लिख सकते थे। किन्तु परम्परा से चली आती क्षेत्रीय भाषा अर्धमागधी का उपयोग किया। वह सरह के समय में भी लोक-भाषा रही हो। उक्त भाषा मूल में दिखलाई देती है। छायावाली भाषा में तत्सम शब्द प्रवेश पा गए हैं। और हम अनुभव करते हैं कि नालन्दा विश्वविद्यालय में प्राकृत माध्यम नहीं था। वहाँ पर माध्यम संस्कृत था इसलिए प्राकृत के शास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत माध्यम से पढ़ाए जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं सरह में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अर्धमागधी में ही किया है किन्तु अनुवादकों और सम्पादकों ने तथा अध्यापकों ने संस्कृत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अधिक किया। दोहाकोश के मूल दोहों में संस्कृत के पारिभाषिक शब्द नहीं हैं। यह बाद के विद्वानों और आचार्यों का काम है। तिब्बत में अर्धमागधी का रूप प्रचलित नहीं हुआ। लगता है, भोट भाषा के मूल से भोट भाषा के अनूदित ग्रन्थों में संस्कृत के पारिभाषिक शब्द अधिक मिलते हैं। ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्द इस प्रकार हैं

शून्य निरंजन	= मूल में सण्ण णिरञ्जण
परम पद	= मूल में परम पउदोहा संख्या 139
मोक्षरणा	= मूल में मोक्खरणा

निर्वाणे	= मूल में णिब्बाणे
महासुख	= मूल में महासुहदोहा संख्या 140
अक्षर-वर्ण-विवर्जित	= मूल में अक्खर-वण्ण-विवृज्ज जिअदोहा संख्या 141
पुण्य न पाप	= मूल में पुण्ण ण (उ) पावदोहा संख्या 143
ध्येय न धारण मन्त्र	= मूल में धेअ ण धारण मन्त
शिव अरु शक्ति	= मूल में सिव (अ) सत्तिदोहा संख्या 146

संस्कृत भाषा ने प्राकृत के रूपों को अपनी ध्वनि-प्रवृत्तियों को अपना लिया है। वे मूल हैं यातत्सम हैं या तद्भव हैं इसका पता नहीं चलता। किन्तु सच्चाई यह है कि प्राकृत के ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में हुआ है, इसलिए मूल प्राकृत को मानना चाहिए और संस्कृत को अनूदित। हुआ यह कि पारिभाषिक शब्द तो अध्यापकीय शैली के कारण संस्कृत में आ गए किन्तु सामान्य बोली-भाषा के शब्द वही रहे। तिब्बत में संस्कृत के पारिभाषिक शब्दों का उपयोग अधिक हुआ है। भोट भाषा में उनकी अपनी ध्वनि-प्रवृत्तियों के अनुकूल संस्कृत के शब्द अधिक अपना लिए गए हों। स्वयं सरह के बाद जो पण्डित या आचार्य तिब्बत में पहुँचे हैं, उन्होंने भोट भाषा से पुनः अनुवादित करते हुए प्राकृत रूपों का सर्वथा त्याग कर दिया और संस्कृत की पारिभाषिक शब्दावली अपना ली है। डॉ. द्विज राम यादव ने तिब्बत के त्रिपिटकों के आधार पर पारिभाषिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए अपने शोध-प्रबन्ध में अलग से परिशिष्ट लिखा है।

31

सरह के पदों की भाषा भिन्न है। वह अर्द्धमागधी नहीं है। वह पूर्वी हिन्दी या पुरानी हिन्दी है। उसे अपभ्रंश नहीं कह सकते। यों तो पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी बोलियाँ हैं और सरह तो मागधी-अर्द्धमागधी के सीमा प्रदेशों के हैं किन्तु वे तो यात्रा करनेवाले हैं। अपनी मूल बोली को अपने समय की बोली कोपदों में गाते रहे हों। गीत बहुत कम उपलब्ध हुए हैं। बहुत-से गीत लुप्त हो गए। एक गीत भूमिका में अलग से दिया है। उस गीत को तथा उसके आशय को पीछे लिखा है।

32

पण्डित अद्वयवज्र

परिशिष्ट छः में 'पण्डित अद्वयवज्र' की जीवनी और परिचय दिया गया है। परिचय के आरम्भ का परिच्छेद इस प्रकार है

“सिद्धों के ग्रन्थों के टीकाकारों और पंजिकाकारों में अद्वयवज्र का प्रमुख स्थान है। सिद्धों की सरल भाषा अपने रहस्यवादी रूप के कारण दुरुह हो जाती है, जिसको खोलकार रखने में अद्वयवज्र बहुत ही सिद्धहस्त हैं। सौभाग्य से सरहपाद के सर्वप्रसिद्ध

ग्रन्थ 'दोहाकोश गीति' की अद्वयवज्रकृत पंजिका मूल संस्कृत में मिल चुकी है, और नागरी अक्षरों में डॉक्टर पी.सी. बागची द्वारा सम्पादित होकर छप भी चुकी है। अद्वयवज्र सिद्ध ही नहीं थे, बल्कि वह सिद्धों के सम्पर्क में आकर सिद्धचर्या के अभ्यासी भी थे। दसवीं सदी के अन्त में वह मौजूद थे; सम्भव है ग्यारहवीं सदी के प्रथम पाद में भी जीवित रहे हों।"दोहा-कोश (हिन्दी छायानुवाद सहित), पृ. 469।

33

यह (अद्वयवज्र की जीवनी), राहुलजी को नेपाल में 1934 या 1936 में मिली है। राहुलजी ने संस्कृत में जीवनी देखी और उसे यथावत् लिख दी और बाद में उसका हिन्दी में अर्थ भी दिया है। लिखने का मूल आशय है बौद्ध-धर्म में संस्कृत की परम्परा नालन्दा से आरम्भ हुई और वह परम्परा नेपाल तथा तिब्बत में पहुँची। भारत में प्राकृत की परम्परा जैसे तैसे सरहपाद के समय तक बनी हुई थी और बाद में परम्परा क्षीण हो गई और फिर लुप्त हो गई। संस्कृत में शिक्षा-ग्रन्थों की परम्परा रही है, वह प्राकृत भाषा में परम्परा बन ही नहीं सकी और बनने से पूर्व समाप्त प्रायः होने लगी। बौद्धों के आचार्य प्राकृत से संस्कृत अधिक जानते थे। उन्होंने प्राकृत ग्रन्थों के अनुवाद संस्कृत में प्रस्तुत कर दिए। बौद्धों को जो ग्रन्थ प्राकृत भाषा में पढ़ाना आवश्यक समझा जाता था, उनके संस्कृत अनुवाद प्रस्तुत कर दिए जाते थे और फिर अनुवादों में भी एक ही प्राकृत-ग्रन्थ के विविध अनुवाद उपलब्ध हो जाते थे। संस्कृत भाषा प्राचीन विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम रूप में अपनाई जाने लगी थी। संस्कृत ज्ञान-विज्ञान की माध्यम भाषा रही है। संस्कृत में जैसे बौद्ध-ग्रन्थों के अनुवाद हुए, वैसे जैन आगमों के (प्राकृत-ग्रन्थों के) अनुवाद भी हुए हैं किन्तु जैनों के मूल-ग्रन्थ प्राकृत में अधिक सुरक्षित रहे हैं। जैन-ग्रन्थों के अनुवादों में मूल पाठ (प्राकृत भाषा में) प्रथम दिया जाता रहा है। और संस्कृत अनुवाद बाद में दिया जाता रहा है। बाद में जब प्राकृत भाषा प्रचलित नहीं रही तो जैनों के प्राकृत ग्रन्थ बौद्धों के प्राकृत ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहे हैं।

34

बौद्ध-धर्म के पालि में लिखित त्रिपिटक-ग्रन्थ भारत में बहुत बाद में पहुँचे। पूरी तरह से वे नालन्दा में भी उपलब्ध रहे हों, इसमें सन्देह है। मागधी के परिवर्तित रूप से भी पढ़ना समस्या रही हो। जो ग्रन्थ पहुँचे थे, उन्हें विदेशी लोग ले गए। संस्कृत में अनूदित ग्रन्थ चीन में पहुँचे हैं और यही स्थिति तिब्बत-नेपाल आदि की भी है। फाहियान को धम्मपद नहीं मिला था और उसी के लिए वह सिंहल देश गया था। फाहियान जिस समय आया था, उस समय अफगानिस्तान से नालन्दा तक और सुदूर

दक्षिण में भी बौद्ध धर्म व्याप्त रहा है किन्तु उसने बौद्ध धर्म के भारत में जैसे उत्कर्ष की कल्पना की थी, वैसा उत्कर्ष उसे देखने को नहीं मिला। उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्धों के त्रिपिटक ग्रन्थ पढ़ाए जाते थे। सरहपाद तो बाद के हैं। सरहपाद के बाद में लगता है, नालन्दा विश्वविद्यालय बन्द हो गया था। मैंने नालन्दा विश्वविद्यालय के खंडहर तो देखे हैं किन्तु उसके इतिहास की ठीक ठीक जानकारी मुझे नहीं है। राजगृह और पावापुरी के बीच में नालन्दा है। गया से गया था और उसी दिन लौट गया। सारनाथ में ऐसे ही खंडहर हैं। इन तीर्थ स्थानों को सुरक्षित रखा गया है। मुझे यहाँ कहना यह है कि नालन्दा विश्वविद्यालय का बन्द हो जाना भारत से बौद्ध धर्म के लुप्त होने का संकेत है।

35

सरहपाद उस सीमा पर थे, जहाँ पर प्राकृत का युग समाप्त हो रहा था और संस्कृत का उत्कर्ष बढ़ रहा था। पतंजलि के महाभाष्य का काल प्राकृत के उत्कर्ष का काल था। वह संस्कृत को शिष्ट भाषा के रूप में सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहा था। इसी प्रयत्न में उसने महाभाष्य जैसा ग्रन्थ लिखा। किन्तु सरहपाद के समय में स्थिति काफी बदल गई थी।

36

प्राकृत के मूल ग्रन्थों में संस्कृत के तत्सम शब्द समूह प्रायः नहीं पाए जाते। प्राकृत, प्राकृत है और संस्कृत संस्कृत है। और प्राकृत तो अन्त तक (जब तक रही, तब तक) प्राकृत ही रही। प्राकृत से संस्कृत समृद्ध हुई है। संस्कृत से प्राकृत समृद्ध नहीं हुई। किसी संस्कृत ग्रन्थ का प्राकृत में अनुवाद नहीं हुआ जब कि प्राकृत के अनेक ग्रन्थ के अनुवाद संस्कृत में उपलब्ध हैं। ऐसा क्यों है? विचार करने की आवश्यकता है। नेपाल/चीन/तिब्बत आदि देशों में बौद्ध धर्म संस्कृत के माध्यम से पहुँचे हैं और मुझे लगता है सरहपाद के ग्रन्थ जो भी भोट भाषा में अनूदित हुए हैं, वे सब संस्कृत से (अनुवादों से) अनूदित हुए हैं। संस्कृत का प्रचार तिब्बत में हो गया था। और यह प्रचार सरहपाद से पहले ही हो गया था।

37

तिब्बती त्रिपिटक

तिब्बत के त्रिपिटकों पर वज्रयानियों का प्रभाव है और ये पालि के त्रिपिटकों से अलग प्रतीत होते हैं। चीन के त्रिपिटकों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता। चीन में त्रिपिटकों के अधिकांश ग्रन्थ नालन्दा से ही गए हैं और वे संस्कृत के माध्यम से गए

हैं और उनका अनुवाद चीनी भाषा में हो गया है। तिब्बती त्रिपिटकों के आधार पर डॉ. द्विजराम यादव ने वज्रयानी पारिभाषिक-शब्दों का अर्थ दिया है और व्याख्या भी की है। सन्दर्भ ग्रन्थों के शीर्षक दिए हैं। ग्रन्थ इस प्रकार हैं

1. श्री वज्रयोगिनी साधन (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड 52, पृ. 280)
2. देवी का पुरुष पितृ कहलाता है, वह सर्वदा सम्मुख नहीं रहता, इसलिए गुरु को ही देव पुरुष समझा जाता है।
3. तिब्बती परम्परा के अनुसार गरुड़ भी मुद्रा का प्रतीक है।
4. तिब्बती परम्परा के अनुसार गरुड़ की प्रत्येक ध्वनि का अभिप्राय निम्न रंगों से है
वं=नीला, हं = उज्ज्वल, हिं = लाल, हैं = काला, हुं = पीला, फट = हरा।
5. इन मन्त्रों का जैसा पाठ तिब्बती त्रिपिटक परम्परा में मिला है, उसी का पुनः लिप्यन्तर कर दिया गया है। शुद्ध पाठ कहीं भी नहीं मिलता।
6. अधिष्ठान महाकाल साधन नाम (तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड 86, पृ. 168, पत्र-291 अ)
7. शोध-प्रबन्ध में जिस स्थान पर यह कहा गया है कि सरह ने जिन देवी-देवताओं का वर्णन किया है, वे सब हिन्दू तथा अन्य भारतीय देवताओं से मिलते हैं, उस स्थान पर यह अंश विशेष द्रष्टव्य है।
8. लाल रंग का लक्षण क्रोध-शुद्ध से है।
9. वह साधना शैवों की साधना से मिलती-जुलती है।
10. महाकाल स्तोत्र(तिब्बती त्रिपिटक, खण्ड 86, पृ. 177)। मोह का विनाश होने पर धर्म मुद्रा बनती है।
11. श्री बुद्ध का पाल साधन नाम (खण्ड 58, पृ. 102)
12. श्री बुद्ध कपाल नाम मण्डल विधि क्रम प्रद्योतन (तिब्बती त्रिपिटक) खण्ड 58, पृ. 102, फलक 251 अ।
13. लोक देव, भूमिपाल और वरुण।
14. तिब्बती परम्परा के अनुसार बछिया को एक सप्ताह तक बिना चारे का रखा जाता है और सातवें दिन जो गोबर मिलता है, वह मण्डल रचना के काम आता है।
15. श्री सरहप्रभु मैत्री पाद (तिब्बती त्रिपिटक खण्ड 87) और अन्त में लिखा है

॥ ब्राह्मण सरह और स्वामी मैत्रीपाद की महामुद्रा समाप्त ॥ इति

सन्दर्भ-ग्रन्थों में तिब्बती त्रिपिटकों के प्रकाशकों के नाम, नगरों सहित दिए हैं। कुछ नाम टोकियो, कलकत्ता, वाराणसी के हैं। प्रकाशित संस्करणों के आधार पर परिशिष्ट लिखा गया है।

स्पष्ट है कि तिब्बती त्रिपिटकों का आधार सरहपाद हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये कहलाने को तो त्रिपिटक कहलाएकिन्तु इनकी भाषा, देश परम्परा के अनुसार बदल गई है। वज्रयानियों का प्रभाव तिब्बती संस्कृति में घुला-मिला प्रतीत होता है और उन पर शैवों का प्रभाव भी दिखलाई देता है। मैं सब की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। मुझे इतना ही कहना है कि यह सारी कापालिक साधना रहस्यमय है। अन्ततः रहस्यवाद आध्यात्मिक हो ही जाता है और तब पारिभाषिक शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। सरहपाद तो अन्त तक बौद्ध बने रहे। उसके बाद के सिद्धों का इतिहास देखा हुआ नहीं है। बहुत से अल्प ज्ञात हैं किन्तु उन्हीं में से सन्त वाङ्मय उपजा है। पहले तो नाथ सम्प्रदाय है, जिसमें गोरखनाथ सब से अधिक प्रसिद्ध हुए। सरहपाद को तो बौद्ध कहेंगे किन्तु गोरखनाथ को कोई बौद्ध नहीं कहता। गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ, जालपानाथ, ज्ञाननाथ, निवृत्तिनाथ, चर्पटनाथ, मीननाथ आदि नौ तो प्रधान हैं। इनकी अपनी लम्बी परम्परा है। नाथों में प्रधान रूप से भारत में ही अलग-अलग प्रदेशों में रहनेवाले और भ्रमण करने वाले हैं। नाथों ने भारतीय (आधुनिक) भाषाओं को अपनाया है। यह स्वतंत्र विषय है। इस पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, क्षितिमोहन सेन आदि विद्वानों ने कार्य किया है। इस प्रवृत्ति को निर्गुणी प्रवृत्ति कहा गया है। निरगुणियों में जो रहस्यवाद है, उसका आधार हमें सरहपाद को मानना चाहिए। सरहपाद ने बौद्ध धर्म को नया मार्ग दिया। वे प्राचीन परम्परा को अपनाते हुए नये उद्भव को भी स्थान देते हैं। उनके विद्रोह और बदलते स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है। यों देखा जाए तो भारत से बौद्ध धर्म लुप्त नहीं हुआ। उसका प्रभाव सन्त वाङ्मय में दिखलाई देता है। गुरु और गोविन्द में से गुरु को महत्त्व देने का काम आरम्भ में सरहपाद ने ही किया है और बाद में इन गुरुओं के पंथ बन गए गुरु नानक से गुरु गोविन्द सिंह तक ही नहीं, कबीर पंथी, दादू पंथी... आदि अनेक हो गए हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं को अपनाकर निर्गुण मार्ग आगे चला है।

ऋग्वेद में वर्णित नदियाँ

कृपाशंकर सिंह*

ऋग्वेद में वर्णित नदियों में सर्वाधिक पूजनीय और पवित्रतम नदी सरस्वती है। उसे प्रचंड तरंगों वाली नदी के रूप में चित्रित किया गया है। सरस्वती अन्न-सम्पन्ना है जो अन्न के द्वारा हमारी तृप्ति करती है। वह हमें सिंचित भूमि प्रदान करती है। पंचजाता की समृद्धि को बढ़ाने वाली है। ऋषियों ने उसकी स्तुति करते हुए कहा है कि शुभ्रवर्णा सरस्वती हमारी मैत्री और भक्ति को स्वीकार करे। सरस्वती अपने तट पर बसे आर्यों को लौह परकोटे (आयसी : पू:) की तरह सुरक्षा देती है। वसिष्ठ अन्न-धन देने वाली सरस्वती से प्रज्ञा को चैतन्य करने की प्रार्थना करते हैं। एक और ऋषी ने सरस्वती को 'धी' (बुद्धि) को जाग्रत करने वाली बताया है। सरस्वती को माताओं में सर्वोत्तम, नदियों में सर्वोत्तम और देवियों में सर्वोत्तम कहा गया है।

सरस्वती के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण ऋग्वेदिक नदी सिन्धु है। उसे भी एक विशालकाय नदी के रूप में चित्रित किया गया है, जो वृषभ के समान गर्जन-तर्जन करती हुई चलती है। सरस्वती की तरह सिन्धु भी भूमि को उपजाऊ बनाने में सहायक है। एक ऋषि ने सिन्धु को तेज चाल वाली घोड़ी के समान अद्भुत तथा स्वस्थ स्त्री के समान दर्शनीय बताया है।

सरस्वती और सिन्धु के अलावा ऋग्वेद में गंगा, यमुना, सतलुज, रावी, चिनाब, झेलम, व्यास, जैसी बड़ी-बड़ी नदियों का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त सरयू, गोमती, मरुद्वृधा, सोहान, रसा, अनितभा, कुभा आदि अनेक नदियों का भी उल्लेख हुआ है। ऋषि विश्वामित्र और व्यास तथा सतलुज नदियों के बीच का संवाद बड़ा सुन्दर और काव्यात्मक है।

ऋग्वेदिक ऋषियों ने सरस्वती, सिन्धु तथा अन्य नदियों को लेकर जो ऋचाएँ कही हैं, उनका अध्ययन तत्कालीन समाज को समझने के लिए हमें महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रदान करता है।

ऋग्वेद के छोटे मण्डल में भरद्वाज ऋषि ने एक पूरा सूक्त **सरस्वती** नदी को लेकर कहा है। वे कहते हैं

* कृपाशंकर सिंह, C- 4/86/2 सफ़्दरजंग विकास क्षेत्र, (हौज खास), नई दिल्ली-110016,
दूरभाष : 26854818, मो. 9868637567

यह सरस्वती (नदी) अपने बल और प्रचंड तरंगों से किनारे के पर्वतों के ऊँचे भाग को कमलमूल तोड़ने वाले के समान तोड़ती है। तटों को ध्वस्त करने वाली वेगवती नदी सरस्वती को धारण करने और अपनी रक्षा के लिए हम उसकी स्तुति करते हैं। (6.61.2)

सरस्वती, तुम देवनिन्दकों को नष्ट करो। सर्वत्रव्याप्त वृषय या त्वष्टा के पुत्र का तुम्हारी सहायता से इन्द्र ने संहार किया। हे अन्न सम्पन्ना सरस्वती, मनुष्यों के कल्याण के लिए तुमने उन्हें (सिंचित) भूमि दी और उनके लिए जल प्रवाहित किया है। (6.61.3)

सरस्वती (नदी) अनेक प्रकार के अन्न देने से अन्नवाली कहलाती है। वह स्तोताओं की रक्षा करने वाली है। सरस्वती अन्न के द्वारा भलीभाँति हमारी तृप्ति करें। (6.61.4)

हे देवि सरस्वती, जिस प्रकार युद्ध में शत्रुओं से रक्षा करने के लिए इन्द्र को बुलाते हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति धन प्राप्ति के लिए युद्ध में प्रवृत्त होता है, उसकी तुम रक्षा करना। (6.61.5)

अन्न सम्पन्ना सरस्वती, संग्राम में हमारी रक्षा करना और पूषा की तरह हमें धन देना। (6.61.6)

सरस्वती ने हव्यदाता वध्यस्व को धैर्यवान तथा ऋण से छुटकारा दिलाने वाला दिवोदास नाम का पुत्र दिया है। दिवोदास ने 'पाठी' नामक कष्ट देने वाले कंजूस का नाश किया। सरस्वती, तुम्हारे ये दान महान हैं। (6.61.1)

स्वर्णिम रथ पर आरूढ़, भीषण वीरता धारण करने वाली और शत्रुओं का नाश करने वाली सरस्वती हम स्तोताओं की रक्षा करती है। (6.61.7)

सरस्वती का निरन्तर प्रवाहित जल प्रचंड शब्द करता विचरण करता है। (6.61.8)

नियत क्रम से भ्रमण करने वाले सूर्य जिस प्रकार दिन को ले आते हैं, वैसे ही सरस्वती हमारे सारे शत्रुओं को परास्त करती हुई जल से पूरित अपनी भगिनियों को हमारे पास ले आवें। (6.61.9)

प्रियजनों में अत्यन्त प्रिय गंगा आदि सात भगिनियों से संयुक्त, प्राचीन ऋषियों द्वारा सेविता हमारी प्रियतमा सरस्वती हमारे लिए सदा स्तुत्य हैं। (6.61.10)

पार्थिव धन को जो देने वाली है, पृथ्वी और अंतरिक्ष के विस्तार को जिसने अपने तेज से भर दिया है, वह सरस्वती निन्दकों से हमारी सुरक्षा करें। (6.61.11)

तीन स्थानों (प्रदेशों) में रहने (बहने) वाली, गंगा आदि सात नदियों से युक्त, चारों वर्णों और निषाद् (पञ्चजाता) की समृद्धि को बढ़ाने वाली सरस्वती (नदी) संग्राम के समय आह्वान करने योग्य हैं। (6.61.12)

अन्य सभी नदियों में महत्त्व के योग से, प्रभाव से, तथा तेज से अधिक श्रेष्ठ सरस्वती सर्वाधिक जल वाली है। वह यशों से युक्त व बड़प्पन में बहुत महान है। वह रमणीय आकाश के समान विस्तृत और अधिक गुणवाली है। (6.61.13)

हे सरस्वती, हमें उत्तम धन प्रदान करो। हमें अपने जल से वंचित मत करो। हमें दूर भी मत करो। हमारी मैत्री और भक्ति को स्वीकार करो, हम तुम्हारे पास से दूर दूसरे खेतों और वनों में न जायें। (6.61.14)

ऋषि वसिष्ठ ने सातवें मण्डल के सूक्त 95 की पाँच और 96 की प्रथम तीन ऋचाएँ सरस्वती नदी की स्तुति में कही हैं। वे सरस्वती के बारे में कहते हैं

यह सरस्वती लौह परकोटे (आयसी पूः) की तरह सुरक्षा देने वाली होकर पोषक जल के साथ बह रही है। वह अपनी महिमा द्वारा दूसरी सभी नदियों को बाधित करती हुई सारथी की तरह जाती है। (7.95.1)

दूसरी ऋचा में वसिष्ठ कहते हैं

*एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेष्टं पयो दुदुह नाहुषाय॥ (7.95.2)*

सभी नदियों में पवित्रतम तथा पर्वत से लेकर समुद्र तक आने वाली यह अकेली सरस्वती चेतना युक्त सी चल रही है। वह इस पृथ्वी के बहुत धनों को बताती है (धान्य रूपी धन को प्रदान करती है), और राजा नहुष को वह दुग्ध घी देती रही। (7.95.2)

यह सौभाग्य लाने वाली सरस्वती इस युग में हमारी स्तुति सुनकर प्रसन्न हों। घुटने टेक कर नमन करने वाले उपासक सरस्वती के पास जाते हैं। सरस्वती श्रेष्ठ धन वाली है और मित्रभाव से रहने वाले लोगों के लिये अत्यन्त दयालु है। (7.95.4)

हे सरस्वती, हम इस हव्य का हवन करके नमनपूर्वक तुम्हारे पास से धन प्राप्त करेंगे। तुम हमारी स्तुति सुनो। हम तुम्हारे अत्यन्त प्रिय आवास में आश्रयभूत वृक्ष की तरह तुम्हारे साथ रहें। (7.95.5)

हे सुभगे सरस्वती, यह वसिष्ठ ऋषि तुम्हारे लिए यज्ञ का द्वार खोलता है। हे ऐश्वर्य को देने वाली, उज्वल वर्ण वाली सरस्वती, तुम वृद्धि प्राप्त करो, तथा स्तोता को अन्न दो। हे कल्याणिनी, तुम बढ़ो और स्तुति करने वालों को अन्न दो। (7.95.6)

वसिष्ठ, तुम नदियों में शक्तिशाली सरस्वती के लिए बृहत् स्तोत्रों का गान करो। द्यावा-पृथ्वी में निवास करने वाली सरस्वती की श्रेष्ठ स्तोत्रों से वंदना करें। (7.96.1)

हे शुभ्रवर्णा सरस्वती, तुम्हारी कृपा से मनुष्य दिव्य और पार्थिव दोनों प्रकार के अन्न प्राप्त करता है। तुम हमारी रक्षा करो। मरुतों की सखी बनकर तुम हवि देने वालों को धन से परिपूर्ण करो। (7.96.2)

हितकारिणी सरस्वती कल्याण करने वाली हैं। सुन्दर प्रवाह संयुक्त और अन्न देने वाली सरस्वती हममें प्रज्ञा चैतन्य करें। जमदग्नि ऋषि द्वारा तुम जिस तरह पूजित हो, उसी तरह वसिष्ठ के भी स्तोत्र स्वीकार करो। (7.96.3)

एक और ऋचा में वसिष्ठ अपनी रक्षा और कल्याण के लिए नदियों की स्तुति करते हैं

जो नदियाँ प्रवण देश में बहती हैं, जो निम्न और उच्च प्रदेशों में होकर बहती हैं, जो जल से भरी हुई और कम जल वाली होकर संसार को तृप्त करती हैं, वे सभी दिव्य नदियाँ हमारे शिपद नामक रोग का निवारण कर के कल्याणकारी बनें। सभी नदियाँ हमारी रक्षा करें। (7.50.4)

ऋषि मधुच्छंदा ने सरस्वती की स्तुति करते हुए कहा

पवित्र बनाने वाली, अन्न और धन देने वाली सरस्वती ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल करें। (1.3.10)

सत्य कर्मों की प्रेरणा देने वाली, मेधावी जनों को शिक्षा देने वाली सरस्वती हमारे शुभ गुणों के प्रकाश को लाने वाले यज्ञ को कराने वाली हैं। (1.3.11)

नदी रूप में प्रवाहित होते हुए सरस्वती ने प्रभूत जल-राशि उत्पन्न की है। जल-राशि के अतिरिक्त उन्होंने समस्त ज्ञानों (धी) को भी जाग्रत किया है। (1.3.12) ऋचा इस तरह है

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।

धियो विश्वा वि राजति ॥

इस ऋचा में 'धी' विशेष महत्त्व का है। 'धी' अर्थात् बुद्धि, प्रज्ञा जो ज्ञान के प्रकाश का विस्फारण करती है।

यह सम्भावना हो सकती है कि बाद के ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में सरस्वती के वाग्देवी के रूप का जो विस्तार हुआ, उसके मूल में ऋग्वेद की यह ऋचा रही हो। पर ऋग्वेद में इस ऋचा के पीछे का भाव यह भी हो सकता है कि सरस्वती का तट ही अधिरकतर ऋषियों का वास रहा है, और उसी तट पर ऋग्वेद का गान होता रहा है, इस कारण सरस्वती को प्रज्ञा को प्रकाशित करने वाली बताया गया। सरस्वती नदी के प्रति अत्यधिक श्रद्धाभाव इसकी पृष्ठभूमि में रहा हो सकता है।

गृत्समद दूसरे मण्डल में सरस्वती की स्तुति करते हुए कहते हैं

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ (2.41.16)

माताओं में सर्वोत्तम, नदियों में सर्वोत्तम, देवियों में सर्वोत्तम हे सरस्वती, हम जो अप्रशस्तों के समान हैं, उन्हें प्रशस्ति के योग्य बनाओ।

सरस्वती तुम तेजस्वी हो। तुम्हारे आश्रय में ही अन्न है। शुन-होत्रों में तुम सोमपान करके प्रसन्न बनो तथा हमें उत्तम सन्तति प्रदान करो। (2.41.17)

हे अन्न और जल से युक्त सरस्वती, हमारी स्तुति को स्वीकार करो। हम गुत्समद वंशी ऋषियों ने देवों का प्रिय हव्य तुम्हें दिया है। (2.41.18)

ऋषि विश्वामित्र तीसरे मण्डल में सरस्वती, इला, और भारती की स्तुति करते हुए कहते हैं

भारती भारतीयों के साथ, इड़ा देवताओं के साथ और अग्नि मनुष्यों के साथ आवें। सरस्वती सारस्वतजनों (सरस्वती तट के जनों) के साथ आवें। तीन देवियाँ आकर हमारे सम्मुख इस कुश पर अधिष्ठित हों। (3.41.8)

स्पष्ट है सारस्वत से विश्वामित्र का आशय सरस्वती के किनारे वास करने वाले जनों से होगा।

सातवें मण्डल में वसिष्ठ ने वरुण को राष्ट्रों का राजा और नदियों का रूप कहा है।

वरुण राष्ट्रों के राजा (राष्ट्रानाम राजा) और नदियों के रूप (नदीनां पेशः) हैं। वे अपने बल से सब जगह गमन करने वाले हैं। (7.34.11)

ऋषि कण्व-पुत्र सोभरि चित्र राजा के दान की प्रशंसा करते हुए सरस्वती को शोभन धन की स्वामिनी बताते हैं

हे राजन्! मुझ हव्यदाता को इतनी सम्पत्ति या तो इन्द्र ने दी या शोभन धन की स्वामिनी सरस्वती नदी ने दी, या फिर हे राजा चित्र, तुमने दिया है। (8.21.17)

जिस प्रकार पर्जन्य (मेघ) सर्वत्र फैलकर वृष्टि द्वारा पृथ्वी को प्रसन्न करते हैं, वैसे ही सरस्वती नदी के तीर के निवासी अन्य राजको (राजकाः) को सहस्र और अयुत (दश सहस्र) धन देकर चित्र राजा उन्हें प्रसन्न करते हैं। (8.21.18)

दसवें मण्डल में विश्वेदेवा की स्तुति में गय ऋषि ने सरस्वती, सरयू, सिन्धु आदि नदियों का उल्लेख किया है

महान तरंगों वाली सरस्वती, सरयू, सिन्धु आदि इक्कीस नदियाँ हमारे संरक्षण के लिए आवें। जल प्रवाह लाने वाली और माता के समान ये सभी नदियाँ घृत और मधु के समान जल हमें दें। (10.64.9)

वसिष्ठ एक रचना में कहते हैं

नदियों में सिन्धु माता (सिन्धु माता) और सरस्वती सप्तमा (सप्तथी) है। मनोरथ पूर्ण करने वाली मनोरम धाराओं वाली ये नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वे अपने जल से परिपूर्ण अन्न बढ़ाती हुई साथ-साथ प्रवहमान रहें। (7.36.6)

ऋग्वेद में **सिन्धु** को भी विशालकाय नदी के रूप में चित्रित किया गया है, जिसकी धारा का वेग प्रचंड है। यह वृषभ के समान गर्जन-तर्जन करती हुई आगे बढ़ती है। दसवें मण्डल के सूक्त 75 में सिन्धु को लेकर ऋचाएँ कही गई हैं। इस

सूक्त में देवता के रूप में नदी को लिया गया है, जिसके प्रणेता ऋषि प्रियमेध-पुत्र सिन्धुक्षित् हैं। वे कहते हैं

हे जल, सेवा भाव वाले स्तोता के घर में तुम्हारी विस्तृत महिमा को मैं कहा करता हूँ। नदियाँ सात-सात करके तीन स्थानों (पृथ्वी, आकाश, द्युलोक) से चलीं। नदियों में सबसे तेज बहने वाली सिन्धु है। (10.75.1)

हे सिन्धु जिस समय तुम भूमि के उपजाऊ भागों की ओर बहीं, उस समय वरुण ने तुम्हारे प्रवाह के लिए विस्तृत मार्ग बनाया। तुम पृथ्वी पर उच्च मार्ग से जाती हों। तुम सभी नदियों के ऊपर विराजती हो। (10.75.2)

सिन्धु-प्रवाह का शब्द धरती से उठकर आकाश को घहरा देता है। सिन्धु अत्यन्त वेग और दीप्त लहरों के साथ बहती है। सिन्धु जिस समय वृषभ के समान प्रचण्ड शब्द करती हुई आती है, उस समय ऐसा लगता है मानों आकाश (मेघ) से घनघोर गर्जन-तर्जन के साथ वृष्टि हो रही है। (10.75.3)

जिस प्रकार मातायें अपने शिशु के पास जाती हैं, और दुधारू गौवें बछड़े के पास जाती हैं, वैसे ही अन्य नदियाँ शब्द करती हुई सिन्धु के पास जाती हैं। जैसे युद्ध करने वाला राजा सेना ले जाता है, वैसे ही, सिन्धु अपनी सहायक नदियों को लेकर आगे आगे चलती है। (10.75.4) सिन्धु नदी सीधी बहने वाली, स्वच्छ जल वाली दीप्तिमती है। सिन्धु का जल अत्यन्त तीव्रगति से प्रवाहित होता है। नदियों में सिन्धु सबसे तेज बहने वाली है। यह तेज चाल वाली घोड़ी के समान अद्भुत तथा स्वस्थ स्त्री के समान देखने में सुन्दर है। (10.75.7)

सिन्धु श्रेष्ठ अश्वों, सुन्दर रथ, सुन्दर वस्त्र, सुनहरे रंग वाली, सुसज्जित, अन्नवती तथा पशुलोम वाली है। सिन्धु नित्य तरुणी और सरकण्डों वाली है। सौभाग्यवती सिन्धु मधु बढ़ाने वाले फूलों से आच्छादित है। (10.75.8)

सिन्धु सुखद और अश्व वाले रथ को जोतती है। उस रथ से वह हमें अन्न दे। यज्ञ में सिन्धु के रथ की महिमा गाई जाती है। सिन्धु का रथ हिंसा-रहित, यशस्वी और महान है। (10.75.9)

इसी सूक्त की पाँचवीं ऋचा में पूर्वोत्तर और पश्चिमोत्तर की उन नदियों के नाम हैं, जिन्हें पूर्व से पश्चिम के क्रम में रखा गया है।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।

असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुष्नेमया ॥ (10.75.5)

हे गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिकनी (चिनाब) के साथ मरुद्वृधा (चिनाब और झेलम के बीच की या चिनाब के पश्चिम में बहने वाली मरुवर्दवन नाम की सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान) और आर्जीकीया (व्यास) नदियों हमारे इस स्तोम को स्वीकार करो।

सिन्धु! पहले तुम तुष्टामा (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) को साथ लेकर वहीं, फिर सुसर्तु, रसा और श्वेत्या (ये तीनों सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियाँ) तुमसे मिलीं। तुम क्रमु (कूर्म) और गोमती (गोमल) को कुभा (काबुल नदी) और मेहलु (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) को अपने में सम्मिलित करती हो। इन सभी नदियों के साथ तुम बहती हो। (10.75.6)

गृत्समद ऋषि ने दूसरे मण्डल की एक ऋचा में कहा है

सोमरस पान के बाद उसके मद से उत्साहित होकर इन्द्र ने अपने पराक्रम से सिन्धु नदी को उत्तर मुख कर के बहाया। अपनी वेगवती सेना के द्वारा दुर्बल सेना को छिन्न-भिन्न कर के वज्र द्वारा उषा के रथ को चूर-चूर कर दिया। (2.15.6)

ऋग्वेद की कई ऋचाओं में 'सात नदियों' का उल्लेख हुआ है। ये सात नदियाँ कौन-कौन सी थीं, इसका अलग से कोई वर्णन नहीं है, पर ऋचाओं से यह स्पष्ट है कि 'सात नदियों' से ऋग्वेदिक ऋषियों का आशय पश्चिमोत्तर और उत्तर की (गंगा तक) सभी बड़ी नदियों से रहा होगा। इनमें उत्तर-पूर्व की गंगा से लेकर पश्चिमोत्तर की सिन्धु तक के बड़े भूभाग को सिंचित करने वाली बड़ी नदियाँ रही होंगी।

ऋषि अत्रि पाँचवें मण्डल में मीठे जल से भरी पूरी सात नदियों की स्तुति करते हुए कहते हैं

द्रुत वेग से प्रवाहित होने वाली नदियाँ मीठे जल के साथ हम लोगों के पास आवें। विशेष प्रीति उत्पन्न करने वाले स्तोत्रागण धन प्राप्ति की कामना से आनन्द दायक सप्त महानदियों का आह्वान करते हैं। (5.43.1)

ऋषि गृत्समद इन्द्र के पराक्रम का बखान करते हुए कहते हैं हे मनुष्यो! जो सात रश्मियों वाले, कामवर्षी और बलवान हैं; जिन्होंने सात नदियों को प्रवाहित किया है, और जिन्होंने स्वर्ग जाने को तैयार रौहिण असुर का बज्रबाहु होकर विनाश किया, वे ही इन्द्र हैं। (2.12.12)

हिरण्यस्तूप आंगिरस ने भी इन्द्र की महिमा का बखान करते हुए सात मातृभूत नदियों का उल्लेख किया है

इन्द्र ने पाठी द्वारा छिपाई गौओं और त्वष्टा के सोमरस को जीतकर वृत्र द्वारा अवरुद्ध की गई सात नदियों के प्रवाह को भी मुक्त किया था। (1.32.12)

अश्विद्वय की स्तुति करते हुए वे कहते हैं

हे अश्विद्वय, सात मातृभूत नदियों के जलों से तीन सोमाभिषव प्रस्तुत हुए हैं (तीन बार तीन पात्र भर दिये हैं)। तीन कलश और हव्य भी तैयार है। तुमने आकाश में ऊपर जाकर दिन और रात्रि में तीनों लोकों की रक्षा की थी। (1.34.8)

सविता की प्रार्थना में कहा गया है

सोने की आँखों वाले सविता (हिरण्याक्षः सविता देव) ने पृथ्वी की आठों दिशाये (चार प्रमुख और चार उपदिशाये) प्रकाशित की हैं। प्राणियों के तीनों लोक और सातों

नदियाँ प्रकाशित की हैं। वे हव्यदाता यजमान के लिए वरणीय विभूतियाँ लेकर यहाँ आएँ। (1.35.8)

कुत्स आंगिरस इन्द्र की महिमा का गान करते हुए कहते हैं इन्द्र की कीर्ति को सात नदियाँ धारण करती हैं। इन्द्र के मनोहारी रूप को आकाश, पृथ्वी और अंतरिक्ष धारण करते हैं। इन्द्र की तेजस्विता से प्रकाशित होकर सूर्य और चन्द्र हमारे सम्मुख हम में विश्वास जगाने के लिए बार-बार, एक के बाद एक विचरण करते हैं। (1.102.2)

अग्नि की स्तुति करते हुए पराशर शाक्य का कथन है

जिस प्रकार विशाल सात नदियाँ समुद्र की ओर धवित होती हैं, उसी प्रकार हव्य का अन्न अग्नि को प्राप्त होता है। हमारे पास प्रचुर धन नहीं है, इसलिए हमारी जाति वाले हमारे अन्न का भाग नहीं पाते। हे अग्निदेव! तुम अन्नादि वैभव हमें प्रदान करो। (1.71.7)

ऋग्वेद में ऊपर वर्णित नदियों के साथ और भी अनेक नदियों का नामोल्लेख हुआ है। इन नदियों में अंशुमती, श्वेतयायरी, इरावती, रसा, अनितमा, कुभ, सरयू आदि के नाम हैं।

अगस्त्य मैत्रावरुणि इन्द्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं

इन्द्र तुम शत्रुओं को भयभीत करने वाले हो। बहती हुई सीरा नदी के समान तरंग-युक्त जल पृथ्वी पर गिराते हो। हे शूर, जिस समय तुम समुद्र को जल से परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमसे और यदु के कल्याण का काम किया। (1.174.9)

अग्नि की स्तुति करते हुए देवश्रवा कहते हैं

हे अग्नि, हम इला रूपिणी (अन्नवती) पृथ्वी के उत्तम स्थान में तुम्हें स्थापित करते हैं। हे अग्निदेव, तुम दृषद्वती, आपया और सरस्वती के तटों पर रहने वाले मनुष्यों के गृह में धन से युक्त होकर दीप्त होओ। (3.23.4)

कक्षीवान दैर्घतमस नब्बे नदियों का उल्लेख करते हैं

हे इन्द्र, तुम प्रकाशमान सूर्य के समान ही मनुष्यों के हितकारक हो। तुम्हारा एतश नाम का अश्व रथ का पहिया सतत खींचता रहता है। नौका द्वारा नब्बे नदियों के पार पहुँच कर वहाँ यज्ञ न करने वाले असुरों को नब्बे नदियों के पार फेंक कर तुमने बहुत बड़ा काम किया है। (1.121.13)

जिस प्रकार समुद्र की ओर दौड़ती हुई नदियाँ समुद्र को पूर्ण करती हैं, वैसे ही कुश के आसन पर स्थित सोमरस दिव्य लोक में इन्द्र को तृप्त करता है। शत्रुओं के शोषक, शत्रु रहित, शुभ्र कान्तिवाले मरुद्गण वृत्र हनन के समय इन्द्र की सहायता करते हुए उनके पास खड़े थे। (सव्यआंगिरस 1.52.4)

गृत्समद दूसरे मण्डल में कहते हैं

सोमरस पान के बाद उसके मद से उत्साहित होकर इन्द्र ने इरावती या परुष्णी विशाल नदी के पार जाने के लिए उसके प्रवाह को शान्त किया था। पार जाने में

असमर्थों को सरलता से पार उतार दिया। वे लोग धन प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर पार गये थे। (2.15.5)

वामदेव ने परुष्णी नदी के तट पर निवास करने वाले जनों के मैत्री भाव का उल्लेख किया है। इन्द्र की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं

कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र अपनी भुजाओं द्वारा चार धारों वाले बज्र को शत्रुओं के ऊपर फेंकते हैं। वे अत्यन्त पराक्रमी, श्रेष्ठ नायक और कर्मवान् होकर आच्छादन करने वाली परुष्णी नदी का आश्रय पाने के लिए सेवा करते हैं। इन्द्र ने परुष्णी के विभिन्न प्रदेशों को मित्रता के लिए संवृत किया है। (4.22.2)

हे इन्द्र, तुमने समस्त जल को तथा जल से भरी हुई वेग से प्रवाहित होने वाली नदियों को अपने बुद्धिबल से सर्वत्र स्थापित किया था। (4.30.12)

इसी सूक्त की एक अन्य ऋचा में वामदेव ने सरयू नदी के पार वाले तट के निवासी दो आर्य राजाओं का उल्लेख किया है। जिन्हें इन्द्र ने मारा था। ऋचा में कहा गया है

हे इन्द्र, सरयू नदी के पार के तट के निवासी अर्ण तथा चित्ररथ नामक आर्य राजाओं का तुमने वध किया था। (4.30.18)

इन दो आर्य राजाओं अर्ण और चित्ररथको इन्द्र ने क्यों मारा यह स्पष्ट नहीं होता। यह सम्भावना हो सकती है कि, ये सुदास के विरोधी रहे हों और इन्हें दाशराज्ञ युद्ध के दौरान मारा गया हो।

अत्रि भौम ऋषि गौ पोषण कर्त्री इड़ा और उर्वशी की स्तुति करते हुए कहते हैंगायों के समूह का पोषण करने वाली इड़ा तथा उर्वशी सब नदियों के साथ मिलकर हम लोगों के प्रति अनुकूल हों। अत्यन्त दीप्तिशालिनी उर्वशी हमारी स्तुतियों से प्रशंसित होकर हम लोगों के यज्ञ आदि कार्य की प्रशंसा करके हमारे हवियों को ग्रहण करें। (5.41.19)

ऋषि अत्रि भौम सरस्वती आदि नदियों से अन्न-धन प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं

उदार मन वाले, कुशलता पूर्वक निर्माण कार्य करने वाले ऋभुगण, वर्षणकारी इन्द्र की पत्नी स्वरूपा नदियाँ, विभु द्वारा निर्मित सरस्वती नदी व दीप्तिमती रात्रि आदि सभी देव शक्तियाँ साधकों की मनोकामना पूर्ण करने वाली हैं। ये सब हमें धन प्रदान करें। (5.42.12)

श्यावश्व आत्रेय मरुद्गण की स्तुति में कहते हैं

मरुद्गण परुष्णी नामक नदी में स्थित रहते हैं, और सबको शुद्ध करने वाली दीप्ति से स्वयं को आच्छादित करते हैं। वे अपने बल के द्वारा मेघों का भेदन करते हैं। (5.52.9)

सात-सात संख्यक (बहुल) सर्व समर्थ मरुद्गण एक होकर शत्रु संख्यक (सैकड़ों) गौ, अश्व आदि प्रदान करें। उनके द्वारा दी गई गायों और अश्व-धन को हम यमुना तट पर प्राप्त करें। (5.52.17)

सूक्त 53 में श्यावश्व आत्रेय ने कई नदियों के नाम लिये हैं

हे मरुतो, रसा, अनितभा और कुभा नदियाँ तथा सर्वत्र गमनशील सिन्धु तुम्हें नहीं रोकें। जल से परिपूर्ण सरयू नदी तुम लोगों को नहीं रोके। हम सब तुम्हारे आने से उत्पन्न सुख को प्राप्त करें। (5.53.9)

वे धनवान् रथवीति गोमती नदी के तट पर निवास करते हैं, और पर्वत में भी उनका गृह स्थित है। (5.61.19)

ऋषि बृहस्पति के पुत्र शंभु ने गंगा के ऊँचे तटों का वर्णन किया हैबुबु ने पणियों के बीच गंगा के ऊँचे तटों के समान उच्च स्थान प्राप्त किया था (गांग्यः कक्षः न ऊरुः) (6.45.31)

दसवें मण्डल में ऋषि वज्र वैखानस इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते हैं

वे (इन्द्र) मेघों में जाकर उपजाऊ भूमि पर वर्षा करते हैं। उन सब जल वाले स्थानों पर अनेक छोटी नदियाँ एक साथ मिलकर घृत के समान जल को लाती हैं। उनके न चरण हैं, न रथ है और न डोंगी है। (10.99.4)

विश्वमना वैयश्व ऋषि ने श्वेतयावरी नदी का उल्लेख किया हैअश्विद्वय की स्तुति करते हुए वे कहते हैं

हे अश्विद्वय, स्वर्ण के समान कान्तिमान, पवित्र जल वाली श्वेतयावरी नाम की नदी स्तुति द्वारा तुम्हारे पास जाती है। (8.26.18)

हे अश्विद्वय, श्रेष्ठ कीर्तिवाली, शुभ्र और पुष्टि प्रदान करने वाली श्वेतयावरी नदी को प्रवाहित करो। (8.26.19)

मरुतों के पुत्र द्युतान अंशुमती नाम की नदी का उल्लेख करते हुए यह बताते हैं कि कृष्ण नाम का असुर इसी नदी के तट पर रहता था। इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से उसका संहार किया।

शीघ्र गति वाला कृष्ण नाम का असुर दस सहस्र सेनाओं के साथ अंशुमती नदी के किनारे रहता था। उस चिल्लाने वाले असुर को इन्द्र ने बुद्धि द्वारा प्राप्त किया। मनुष्यों के हित के लिए कृष्णासुर की हिंसक सेना का संहार किया। (8.85.13)

इन्द्र ने कहाअंशुमती नदी के किनारे छिपे विस्तृत क्षेत्र में कृष्ण असुर विचरण करता है। अभिलाषा पूरक मरुतो, मैं चाहता हूँ कि तुम लोग युद्ध में उसका संहार करो। (8.85.14)

दुतगामी कृष्ण अंशुमती नदी के तट पर दीप्तिशाली होकर रहता था। बृहस्पति की सहायता से इन्द्र ने उस देव गुणों से शून्य कृष्ण और उसकी सेना का वध किया। (8.85.15)

पवमान सोम की प्रशंसा में उशना ऋषि कहते हैं
जैसे आकाश में स्थित मेघ से वर्षा होती है और जैसे नदियाँ नीचे समुद्र की ओर जाती हैं, उसी तरह छनते हुए ये सोमरस भेड़ के बालों से बनी छलनी से शोधित होकर कलश में जाते हैं। (9.88.6)

ऋषि मारीच कश्यप पवमान सोम से प्रार्थना करते हैं

हे सोम, जहाँ वैवस्वत् (विवस्वान के पुत्र) राजा हैं, जहाँ स्वर्ग का द्वार है, और जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवाहित होती हैं, उस लोक में मुझे अमर करो। सोम, इन्द्र के निमित्तक्षरित होओ। (9.113.8)

तीसरे मण्डल में ऋषि विश्वामित्र **विपाशा** (व्यास) और **शुतुद्री** (सतलज) नदियों से प्रार्थना करते हैं कि वे थोड़े समय के लिए नीची होकर थाह वाली बन जायें जिससे उस पार जाने वाले भरतजन नदियों को पार कर लें। उनकी प्रार्थना को मानकर नदियाँ नीची हो जाती हैं। विश्वामित्र और दोनों नदियों के बीच का यह संवाद बड़े काव्यात्मक रूप में रखा गया है।

विश्वामित्रघोड़साल से बन्धनमुक्त होकर हर्षनाद करती दो घोड़ियों की तरह, अथवा अपने बछड़ों के वात्सल्य से अभिभूत दो गायों की तरह उतावली विपाशा (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नदियाँ पर्वत की गोद से निकलकर समुद्र से मिलने की अभिलाषा के साथ प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही हैं। (3.33.1)

विश्वामित्रहे इन्द्र द्वारा प्रेरित दोनों नदियों, तुम दो रथियों की तरह समुद्र को जाती हो। हे शुभ्रे, तुम दोनों आपस में एकसार प्रवाहित होते, लहरों से उच्छलित एक दूसरे को साथ लेकर चली जा रही हो। (3.33.2)

विश्वामित्रमैं मातृतुल्य शुतुद्री के पास उपस्थित हुआ हूँ, परम सौभाग्यवती विपाशा के पास उपस्थित हुआ हूँ। बछड़े को चाटने की अभिलाषा से भरी हुई गौओं के समान ये दोनों नदियाँ समुद्र की ओर सतत् प्रवहमान हैं। (3.33.3)

नदियाँहम नदियाँ अपने जल से सबको तृप्त करती हुई देवों द्वारा स्थापित स्थान की ओर जा रही हैं। हमारे प्रवाह का कोई अन्त होने वाला नहीं है, फिर यह विप्र हमें किसलिए पुकार रहा है? (3.33.4.)

विश्वामित्रहे जलवती नदियों! मेरे नम्र और मधुर वचनों को सुनकर अपनी गति को क्षणभर के लिए विराम दे दो मैं कुशिक का पुत्र विश्वामित्र, अपनी रक्षा के लिए महती स्तुतियों द्वारा तुम्हें बुलाता हूँ। (3.33.5)

नदियाँहे विश्वामित्र, नदियों को रोकने वाले वृत्र को मार कर वज्रबाहु इन्द्र ने हम दोनों नदियों को खोदा है। जगत के प्रेरक, उत्तम हाथों वाले और दीप्तिमान इन्द्र ने हमें बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इन्द्र की आज्ञा से ही हम जल से भरी हुई बहती हैं। (3.33.6)

नदियाँइन्द्र ने आहि (वृत्र) को मार ।। उनके इस पराक्रम का सदा गुणगान करना चाहिए। जब इन्द्र ने चारों ओर आसीन जल अवरोधक असुरों को मारा, तब जल प्रवाह अबाधित हो आया था। (3.33.7)

नदियाँहे स्तोता, विश्वामित्र! अपने स्तुति वचन को कभी भूलना नहीं। भावी समय में यज्ञों में स्तुति रचना करके तुम हमारी सेवा करो। हम (दोनों नदियाँ) तुम्हें नमस्कार करती हैं। पुरुषों द्वारा सम्पादित कर्मों में कभी भी हमारी उपेक्षा न करना। (3.33.8)

विश्वामित्रहे भगिनी रूप दोनों नदियों! मैं स्तुति करता हूँ, सूनो, मैं दूर देश से शकट और रथ से (अनसारथेन) आया हूँ। तुम नीची होकर सरलता से पार करने योग्य बन जाओ, हे नदियों, तुम मेरे रथ की धुरी से नीचे हो जाओ, ताकि मैं पार हो जाऊँ। (3.33.9)

नदियाँहे स्तोता, हमने तुम्हारी सारी बातें सुनीं। तुम दूर देश से शकट और रथ से आये हो। जैसे पुत्र को स्तन-पान कराने के लिए माता अवनत होती है, और जैसे, मनुष्य को आलिंगन करने के लिए युवती स्त्री झुकती है, उसी तरह हम भी तुम्हारे लिए नीची हो जाती हैं। (3.33.10)

विश्वामित्रहे नदियों! भरत कुल के जन तुम्हें पारा करेंगे। भरतवंशीय लोग इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर तुम्हारी अनुमति पा चुके हैं, इसलिए मैं (विश्वामित्र) सर्वत्र तुम्हारी स्तुति करूँगा। तुम यजन योग्य हो। (3.33.11)

गोधन अभिलाषी भरतवंशीय जन पार हो गये। ब्राह्मण लोग नदियों की उत्तम स्तुति करते हैं। अन्न उत्पन्न करती हुई तथा शोभन धन से भरीपूरी तुम दोनों छोटी-छोटी नदियों को भरती हुई शीघ्र जाओ। (3.33.12)

हे नदियों! तुम्हारी तरंगों रथ की धुरी से नीचे बहें; तुम लोग रज्जु को नहीं छूना। पापरहिता, कल्याणकारिणी और अनिन्दनीया विपाशा और शुतुद्री इस समय नहीं बहें। (3.33.13)

वाम-इस्लाम जुगलबन्दी उपन्यास में

डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद*

यह 'क्रान्तिकारी' राजनीति का कमाल है कि मजहब को अफीम माननेवाला वामपंथ मजहब के प्रति मुकम्मल ईमान रखनेवाले इस्लाम से अनिवार्य रूप जुड़ी मुस्लिम सियासत से तालमेल रख रहा है। और यह तालमेल भारत में सन् 1940 ई. से चल रहा है। मार्च, 1940 के लीग अधिवेशन में पारित मुस्लिम लीग के पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन उसी साल के अन्त में वामपंथ ने किया था। वह समर्थन अब तालमेल में परिणत हो गया है। यह तालमेल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एहसास किया जा सकता है। पाकिस्तान और माओवादी चीन की सन्धि अमेरिका की सन्धि से कमजोर नहीं है। यह कहा जा सकता है कि चीन, नेपाल और भारत के वामपंथी पाकिस्तान के समर्थन के साथ भारत विरोधी षड्यन्त्र में सक्रिय हैं।... पर यह राजनीति की बात है। यहाँ हम हिन्दी उपन्यास में वाम-इस्लाम जुगलबन्दी पर विमर्श करेंगे। यह स्मरण रहे कि मार्क्सवादी-प्रगतिवादी-जनवादी साहित्य राजनीति से प्रेरित है। वह राजनीति के लिए है और मार्क्सवादी राजनीति के निष्णात साहित्यकारों द्वारा लिखा जाता रहा है।

भारत-विभाजन से सम्बद्ध हिन्दी उपन्यासों में वाम-इस्लाम जुगलबन्दी के संगीत को सुना जा सकता है। मानवीय संवेदना के इस संगीत की आड़ में विभाजन के यथार्थ पर पड़े आवरण को देखा जा सकता है। झूठा-सच, तमस, आग का दरिया, कलिकथा : वाया बाइपास और कितने पाकिस्तान में इस जुगलबन्दी पर हम विचार करेंगे।

वाम-इस्लाम जुगलबन्दी की योजना बन चुकी थी। प्रमाण हैमहापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दर्शन दिग्दर्शन।' इसके दूसरे अध्याय में इस्लामी दर्शन पर लिखा गया है, "वह भली भाँति समझते थे कि जिस शान्ति, व्यापार और धर्मप्रचार में सशस्त्र बाधा को रोकना वह चाहते हैं, वह निश्चेष्ट ईश्वर, प्रार्थना तथा हथियार रख निहत्थे बन जाने से स्थापित नहीं हो सकती। उसके लिए एक उद्देश्य को

* शत्रुघ्न प्रसाद, त्रिपाठी भवन, राजेन्द्र नगर, पथ-13 ए, पटना-16

लेकर आदमियों की सुसंगठित और सुव्यवस्थित शस्त्र बल से इस्लाम-स्थापना में बाधा देनेवालों को नष्ट या पराजित करने में सफल हों।"

स्पष्ट है कि वामपंथ में दीक्षित महापंडित ने इस्लाम के सशस्त्र प्रचार का समर्थन किया है। कारण स्पष्ट है कि वामपंथ भी सशस्त्र क्रान्ति की राह पकड़कर सत्ता परिवर्तन करता रहा है। उधर इस्लाम मजहब को सियासत का आधार देकर एशिया-यूरोप में फैलता रहा है। वामपंथ ने अपनी सियासत तथा यूरोप की ईसाइयत और भारत की हिन्दू संस्कृति के विरोध के लिए इस्लाम की कड़ुरता का समर्थन किया है। यही वाम-इस्लाम जुगलबन्दी का रहस्य है। भारत इस दुरभिसन्धि का शिकार है। हमारा राष्ट्रबोध इस दुरभिसन्धि को समझना चाहता है।

भारत के निकटस्थ इतिहास का निर्विवाद सत्य है कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने बीसवीं सदी के आरम्भ में ही स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन के विस्फोट को देखकर मजहब के आधार पर बंगभंग की योजना बना दी थी। बंगभंग विरोध की तीव्रता को देखकर उसने बंगभंग को रद्द करते हुए सन् 1906 में ही ढाका के नवाब द्वारा मुस्लिम लीग की स्थापना करा दी। इसे कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में माना है। परन्तु यशपाल ने 'झूठा-सच' में कांग्रेस और लीगदोनों को स्वाधीनता के लिए गठित संगठन माना है। उन्नीसवीं सदी के अन्त में ही सैयद अहमद ने सन् 1857 के संघर्ष के लिए मुस्लिमों को निर्दोष सिद्ध करते हुए ईसाई-मुस्लिम गठबंधन की नींव डाल दी थी। सन् 1940 के मार्च में रावीतट पर मुस्लिम लीग के अधिवेशन में भारत के विभाजन के प्रस्ताव के पारित होने पर कम्युनिस्ट पार्टी के छात्र संगठन ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया था। बाद में पार्टी ने मुसलमानों के आत्मनिर्णय के अधिकार के तर्क पर बार-बार समर्थन किया। इस स्थिति में 'तमस' में भीष्म साहनी द्वारा कम्युनिस्ट कार्यकर्ता देवदत्त द्वारा रावलपिंडी में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न झूठ और दिखावा प्रतीत होता है। और यह तालमेल आज तक चल रहा है। यह परम सत्य है कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट के षड्यन्त्र के फलस्वरूप भारत विभाजन का दबाव बढ़ता गया। बंगाल के बाद पंजाब-सीमाप्रान्त के भीषण रक्तपात के दबाव; माउण्टबेटन की सलाह और कांग्रेस नेतृत्व की दुर्बलता के कारण ही भारत का विभाजन हुआ जिसकी त्रासदी को हम आज तक झेल रहे हैं। पाकिस्तान के लिए डायरेक्ट एक्शनसीधी कार्रवाईहिन्दू-सिक्खों पर हमला ही आज का संगठित आतंकवाद है जिसके आगे शासन लाचार-सा दिख रहा है। और सारा भारत मुस्लिम आतंकवाद से त्रस्त हो रहा है।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार यशपाल जी ने 'झूठा-सच' के प्रथम खण्ड के आरम्भ में ही लाहौर की एक हिन्दू बहुल गली में सन् 46 के बंगाल के दंगे की हिन्दू महिलाओं द्वारा चर्च से दंगे का माहौल बनते दिखाया है। भोला पांधे की गली में, "तारा ट्यूशन पर जाने के लिए तैयार हो रही थी कि उस गली में शोर सुनाई दिया। पता चला कि

बच्चोवाली गली से हिन्दू रक्षा कमेटी की ईश्वर कौर जी और ज्ञानदेवी आई हुई हैं। वे दोनों एक मुसलमान फलवाले को डाँटकर भगा रही थीं।... उन्होंने गली की औरतों को समझाना आरम्भ कर दिया कि कैसे 16 अगस्त को मुसलमानों ने कलकत्ते में हजारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया और मुसलमान कहते हैं कि पाकिस्तान बनाएँगे।”

पंजाब के हयात मन्त्रिमण्डल के विरोध में लीगी जुलूस निकालने लगे। पाकिस्तान की माँग की आवाज बुलन्द होती गई। लेखक ने माना है, “लाहौर के हिन्दू सहम रहे थे, लीग का बढ़ता जाता आन्दोलन जाने क्या रंग लाए।” इसके बाद ही अकाली दल के नेता मास्टर तारा सिंह ने विधानसभा के बाहर तलवार दिखाकर मुस्लिम लीग को चुनौती दी। यशपाल जी की दृष्टि में इससे माहौल और बिगड़ा। और फिर उन्होंने अपने नायक जयदेव पुरी के माध्यम से बताया है, “कांग्रेस और लीग दोनों ही संस्थाओं ने देश की गुलामी से मुक्त करने के लिए जन्म लिया था।” लेखक का यह कथन इतिहास विरुद्ध है। झूठ को सच बताया गया है। इसके आगे लेखक के मार्क्सवादी नायक जयदेव का प्रवचक वक्तव्य है, “पाकिस्तान का मतलब मुस्लिम लीग की मिनिस्ट्री ही तो है। किसी की मिनिस्ट्री हो, हिन्दुओं-मुसलमानों को तो गली-मुहल्लों में एक साथ रहना है।” स्पष्ट है कि यशपाल जी ने मात्र एक साल पहले उसी लाहौर में पारित विभाजन के प्रस्ताव को नजरअन्दाज कर लाहौर अल्पसंख्यक हिन्दू-सिक्खों को धोखे में रखना चाहा है। बाद में गैर मार्क्सवादी प्रोफेसर प्राण ने कहा, “अब भी दोनों ऑटोनमी (स्वायत्त) लेकर भी फेडरेशन (सम्मिलित संघ) में रहें तो अधिक हानि नहीं होगी, लेकिन स्वयं एटली की नीति लीग को सेपरेशन के लिए प्रोत्साहन दे रही है।”

लाहौर के क्लब में नैयर के कथन पर एक सरदारजी ने ऊँचे स्वर में कहा, “मुसलमानों के मन में हिन्दू-सिक्खों के प्रति गहरा द्वेष भरा है।... वे सहयोग चाहते ही नहीं, किसी शक्ल में नहीं चाहते। वह तो हम पर प्रभुत्व चाहते हैं। और गाँधी को भी पटेल और नेहरू की व्यावहारिक बात माननी पड़ी।” इस भयानक सत्य के दबाव में ही कांग्रेस नेतृत्व को अदूरदर्शितापूर्ण व शीघ्र सत्ता प्राप्ति की लालसा में विभाजन को स्वीकार करना पड़ा। और गाँधी जी को नेहरू के प्रति मोह के कारण उसका समर्थन करना पड़ा। माउण्टबेटन और एडविना की सलाह यानी नेहरू जी को घेरकर विभाजन मान लेने की सलाह भी सत्य है। कैथरीन क्लैमा के उपन्यास ‘एडविना और नेहरू’ में इसका वर्णन है।

लेखक ने लाहौर के दंगे का प्रभावी वर्णन किया है। हिन्दू-सिक्खों के संघर्ष, पराजय, पलायन और रास्ते में कत्ल को भी प्रस्तुत कर दिया है।

प्रायः अन्त में यशपाल ने इस भीषण दंगे और हिन्दुओं के विनाश की मार्क्सवादी-आर्थिक व्याख्या करके हिन्दू-सिक्खों के घाव पर नमक ही छिड़का है।

शरणार्थी बनी कौशल्या भारत जाने के मार्ग में अपने मुस्लिम ड्राइवर से दंगे की मार्क्सवादी व्याख्या सुनती है, “सच है कि मुसलमानों ने हिन्दुओं को लूटा है, पर हिन्दू सैकड़ों बरसों से इन लोगों को लूटते-निचोड़ते चले आ रहे हैं।... गरीब पहले गुस्से में मुसलमान हुआ, दूसरा गुस्सा यह है। गुस्सा मजहब का भी है।”

यह बिलकुल स्पष्ट है कि वामपंथी लेखक ने मुस्लिम लीग की मजहबी सियासत पर परदा डाल कर हिन्दू-सिक्ख को अपराधी बना देने की कोशिश की है। यही तो वाम-इस्लाम जुगलबन्दी है। इस जुगलबन्दी ने ही झूठ को सच और सच को झूठ में बदल डाला है।

भीष्म साहनी ने ‘तमस’ में रावलपिण्डी और उसके आसपास पाकिस्तान के लिए तनाव और दंगे को अन्धकार (तमस) के रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रतीक तो ठीक ही है। यह भी सच है कि भीष्म साहनी ने ‘तमस’ के आरम्भ में दिखाया है कि मुराद अली ने हिन्दू नत्थू से बहाना कर और रूपए का लोभ देकर सूअर को मरवाकर दूसरे द्वारा मस्जिद की सीढ़ी पर फेंकवाया जिससे तनाव फैले। उधर सुबह में कांग्रेस की ओर से प्रभात फेरी निकली हुई थी। मुहल्ले में सफाई का कार्य भी चल रहा था। स्वाधीनता के नारों के जवाब में दूसरी गली से पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारे लगने शुरू हो गए। और फिर सूअर की लाश की बात फैलने से तनाव उभर आया। नारों के बीच में उत्तेजक बहस भी हुई थी। यदि एक ओर महात्मा गाँधी की जय हो रही थी तो दूसरी ओर से कायदे आजम जिन्दाबाद के शब्दों से जवाब दिया गया।

इस तनाव के फैलने और रावलपिण्डी के अल्पसंख्यक हिन्दुओं में भय के उभर आने से आर्य समाज की साप्ताहिक गोष्ठी में आत्मरक्षा और सशस्त्र होने का प्रवचन दिया जाता है। लेखक ने पंजाब में आर्य समाज द्वारा किए गए रूढ़ियों से मुक्ति, छुआछूत से मुक्ति और हिन्दी-संस्कृत के माध्यम से शिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्यों को भूलकर उस साप्ताहिक गोष्ठी और आत्मरक्षा की तैयारी पर कठोर व्यंग्य किया है। क्या अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा आत्मरक्षा की चिन्ता भी क्रूर व्यंग्य और प्रहार की बात बननी चाहिए? क्या हिन्दुओं द्वारा संचालित अनाज मण्डी के चौराहे पर स्थापित घड़ियाल की मरम्मत और बजने पर तनाव और भय की स्थिति मुसलमानों में आ जाना सही है? वहाँ गाँवों और शहर में मुस्लिम बहुसंख्यक थे। अल्पसंख्यकों को भी मण्डी की रक्षा के हेतु सावधान होने के लिए वह घड़ियाल है। पर वाम-इस्लाम जुगलबन्दी के कारण भीष्म साहनी ने उस घड़ियाल को रावलपिण्डी के लिए भयावह तनाव का प्रतीक बना दिया है। प्रतीक की रचना कलाकौशल है, पर प्रयोजन क्या है? क्या अल्पसंख्यक समाज को चेतावनी देने वाला बहुसंख्यक में भय पैदा कर जाता है? क्या सच है कि पहले भी दंगे में वह घड़ियाल बजा था और भय फैल गया था आज भी भय पैदा कर रहा है। जब कि पहले भी हिन्दुओं की मण्डी जल गई थी। आज भी जल गई है।

क्या यह सच है कि आर्य समाज में प्रशिक्षित होकर एक नौजवान अपने साथियों के साथ एक बूढ़े मुसलमान को छुरे से मार देता है, जिससे शहर का दंगा भयानक हो जाता है? क्या यह सच है कि रावलपिण्डी शहर के अल्पसंख्यकों ने कुछ दिनों तक मुकाबला कर अपनी रक्षा की थी, परिणामस्वरूप जिले के सभी गाँवों के अल्पसंख्यक हिन्दुओं-सिक्खों के घर जला दिए गए थे, और वे मार दिए गए थे? संभवतः वाइसराय या अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री ने हवाई सर्वेक्षण में उस भयानकता का अहसास कर लिया था। उनके रोंगटे खड़े हो गए थे। वैसे लेखक ने एक गाँव के संघर्ष, पराजय, कत्ल तथा स्त्रियों का कुएँ में कूद कर अस्मिता की रक्षा का वर्णन किया है।

लेखक ने डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का सही चित्रण किया है। वह अंग्रेज दोनों को लड़ाने में सुख पाता है। और भीष्म साहनी जी ने उसी के मुख से कहला दिया है कि, “जो लोग मध्य एशिया से सबसे पहले यहाँ आए, शताब्दियों के बाद उन्हीं के नाती-पोते अन्य देशों से इधर आए। नस्ल सबकी एक ही थी। वे लोग जो आर्य कहलाते थे और हजार वर्ष पहले यहाँ पर आए, और वे भी जो मुसलमान कहलाते थे एक ही नस्ल के लोग थे।”

यह कथन अंग्रेजी साम्राज्यवाद और वाम राजनीति के तालमेल का परिणाम है। यह आज भी इतिहास के सन्दर्भ में चल रहा है। सवर्ण हिन्दू को आर्य कहकर विदेशी सिद्ध किया जाता है।

मजदूरों की बस्ती में दंगा नहीं होगा यह कम्युनिस्ट कार्यकर्ता का विश्वास है। पर दंगा हो जाता है।

अन्त में लेखक ने मुस्लिम क्रूरता और अलगाववादी चेतना पर परदा डालने के लिए कुछ को शरणदाता के रूप में दिखाया है। वैसे मुस्लिम अलगाववादी वृत्ति तथा तनाव पैदा करने की हरकत वा प्रवृत्ति को भीष्म साहनी ने दिखा दिया है। परन्तु वामपंथी संगठनों ने समूचे देश में ‘तमस’ की चर्चा और मंचन के माध्यम से हिन्दुत्व की ही आलोचना कीप्रचार के बल पर।

जन्तनशीन कुर्रतुल एन हैदर भारत में सम्मानिता तथा पुरस्कृता लेखिका रही हैं। उनका उपन्यास ‘आग का दरिया’ चर्चित और पुरस्कृत हुआ था। सच्चाई यह है कि इस उपन्यास के प्रथम खण्ड में हिन्दू संस्कृति का गम्भीर एवं प्रभावपूर्ण वर्णन है। फलतः इसके हिन्दी अनुवाद ने सबको मुग्ध कर दिया था। परन्तु ‘आग का दरिया’ के मध्य में देश विभाजन पर महान लेखिका मौन हैं। वह पृष्ठ रिक्त है। खाली पन्ना असहमति का व्यंजक है या यथार्थ से दूर रहकर मौन हो जाना! गम्भीर प्रश्न है। इसका उत्तर नहीं है। क्या लेखिका ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद और मुस्लिम लीग के षड्यन्त्रों के सिलसिले सन् 1906 से सन् 1947 को नहीं देखा है? उसे अनुभूत नहीं

किया है? ऐक्य के लिए गाँधी जी की आत्यन्तिक सदाशयता उन्हें नजर नहीं आई? जिन्ना के दंभ और हठ नजर में नहीं आ सके? खून की नदी दिखाई नहीं पड़ी?

कुर्रतुल-एन-हैदर को सन् 1947 के बाद इण्डिया डैट इज भारत मुसलमानों के लिए आग का दरिया लगा क्योंकि अब शेष मुसलमानों पर शंका की जा रही है। उनकी भाषा-उर्दू दबायी जा रही है। वे बेरोजगार होकर भटक रहे हैं। उनका नायक हिन्दुओं के हिन्दुस्तान से निराश होकर जाने लगा क्योंकि यह देश उनके लिए आग का दरिया बन गया है।

लेखिका की कला ने भारत पर संशय करके कितना बड़ा अपमान किया है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हम कल्पना करें। पर यह उपन्यास इस देश में सम्मानित हुआ। आज तो हिन्दुओं के लिए यह देश मुस्लिम आतंकवाद के कारण आग का दरिया बन गया है। यह सच्चाई सामने तो नहीं आ रही है। यह वाम-इस्लाम जुगलबन्दी का परिणाम है।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यास ‘कलिकथा : वाया बाइपास’ में प्रसंगवश सन् 1946 के 16 अगस्त के भयानक उपद्रव का वर्णन कलकत्ता के सन्दर्भ में किया है। इस उपन्यास के अध्याय 14 में लेखिका ने बताया है कि विदेशों से आए करोड़ों रुपए विश्व हिन्दू परिषद को मिले। उस दिन वे लोग बाबरी मस्जिद तक पहुँचे।

लेखिका ने ‘दि ग्रेट कलकत्ता किलिंग, यानी सन् 1946 के अगस्त की घटना का पूर्वाग्रहपूर्ण वर्णन किया है। इन्होंने इतिहास के विरुद्ध लिखा है, “बात उन दिनों की है जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस का मतभेद चरम पर पहुँच गया था और कायदे आजम जिन्ना ने सोलह अगस्त उन्नीस सौ छियालीस को सारे देश में ‘डायरेक्ट एक्शन डे’ का आह्वान किया था। बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार थी, और उसका प्रधानमन्त्री सुहरावर्दी था।

डायरेक्ट एक्शन डे के दिन दोपहर को मुसलमानों की एक बड़ी रैली आक्टरलोनी मोन्युमेंट के पास... होने वाली थी। जुम्मे का दिन था। मुस्लिम स्त्रियाँ और बच्चे भी सड़क पर थे। जाहिर है कि सुहरावर्दी को कोई आशंका नहीं थी आनेवाली घटनाओं की भयंकरता कीशायद अपनी ताकत के मद में उसे हिन्दुओं की तरफ से कोई बड़ा खतरा नजर नहीं आ रहा था। दूसरी तरफ हिन्दुओं में बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार होने के कारण आशंका और डर फैला हुआ था। पिछले कुछ सालों से हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी साम्प्रदायिक संस्थाएँ लाठी भांजना, अखाड़ेबाजी और लड़ने की शैलियों की शिक्षा को प्रोत्साहित कर रही थीं। गली-मुहल्लों-पाइँ में तरुण व्यायाम समिति, आर्य वीरदल, हिन्दू शक्तिसंघ जैसी संस्थाएँ हिन्दुओं को तैयार कर रही थीं।

सोलह अगस्त से कलकत्ते की सड़कों पर शुरू होनेवाले दंगे या सही अर्थों में नागरिक युद्ध में... कत्ल मुसलमानों का ज्यादा हुआ। सरदार पटेल ने अपनी निर्मम

शैली में इस घटना का उपसंहार इन शब्दों में किया इसमें हिन्दुओं का पलड़ा भारी रहा।”

यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि अलका सरावगी ने मुस्लिम लीग की खूनी सीधी कार्रवाई और आयोजित भयानक हमले का दायित्व अपने मार्क्सवादी आग्रह के कारण हिन्दुओं पर डाल दिया है। यही तो वाम-इस्लाम जुगलबन्दी का कर्कश संगीत है। उस दंगे में सुहरावर्दी के निर्देश पर डेढ़ दिनों तक हिन्दुओं की हत्या होती रही। तब पंजाब तथा बिहार के सिक्ख हिन्दुओं ने उत्तर देने की कोशिश की। इसके बाद ही कलकत्ते में मिलिट्री बुलाई गई। दंगा रुका यही सच है। कलकत्ता के पुलिस कण्ट्रोल रूम के दस्तावेज, ए.सी. गुहा की पुस्तक, स्टेट्समैन की रपटें और गाँधी जी के संस्मरण लेखिका के उपर्युक्त वर्णन को झूठा सिद्ध कर देते हैं। पर राजनीति प्रेरित लेखक इसकी चिन्ता नहीं करते। उन्हें तो भारतीयता के विरोध में वाम-इस्लाम जुगलबन्दी को सफल करना है।

प्रसिद्ध कथाकार स्वर्गीय कमलेश्वर वाम रुझान के सेकुलर लेखक थे। ‘कितने पाकिस्तान’ नामक उपन्यास बहुत चर्चित हुआ। इसके नौ संस्करण हो गए। इस उपन्यास में स्पष्ट है कि धर्म-मजहब और साम्राज्य विस्तार के लिए संसार में देशों के विभाजन होते रहे हैं। भारत का भी विभाजन हुआ। पाकिस्तान का भी विभाजन हो गया। पता नहीं, कितने पाकिस्तान बनेंगे! यह सोचना अच्छा लगा।

कमलेश्वर जी का विचार हैयुद्ध मुक्त विश्व में वर्जनारहित आसक्ति (सेक्स) का आनन्द। यह उनके जीवन का उद्देश्य इस उपन्यास में व्यक्त हुआ है। विश्व के सन्दर्भ में भारत के इतिहास का आर्य हिन्दू, तुर्क-मुगल और अंग्रेजों के राज्य के वर्णन के साथ पहली बार एक आग्रह के साथ पाकिस्तान भारत विभाजन की पूरी कथा को कमलेश्वर जी ने ‘कितने पाकिस्तान’ में रखने की कोशिश की है। अन्तर्विरोधों और पूर्वाग्रह के साथ यह उपन्यास ‘अदीबेआलिया’ का करिश्मा है। इसमें लेखक ‘अदीबेआलिया’ के रूप में मौजूद हैं। इनकी विशेष अदालत में इतिहास से सम्बद्ध हर मृत और जीवित पात्र को बुलाकर बहस कर ‘सत्य की परख’ की जाती है।

वाम रुझान के कमलेश्वर जी स्वभावतः इस्लाम के प्रति मोहग्रस्त हैं। पर जब तब सत्य प्रकट हो जाता है। वाम-इस्लाम जुगलबन्दी का यह नूतन लोकप्रिय संगीत बनकर प्रकट हुआ है।

आर्य-हिन्दू के प्रति इनके पूर्वाग्रह पर विचार कर लें। इन्होंने भी आर्यों को विदेशी माना है, पर आक्रमणकारी नहीं। वैदिक देवता इन्द्र को व्यभिचारी बताया हैबार-बार। पर यह नहीं बताया कि वह दंडित भी हुआ है। आर्य देवताब्रह्मा, सूर्य तथा चन्द्र के व्यभिचार की भी चर्चा है। रामजन्म भूमि आन्दोलन के नेता महन्त अवैद्यनाथ और अशोक सिंहल जी को जाहिलों का नेता सिद्ध किया है। और इनकी

दृष्टि में हिन्दू का अर्थ हैजब नफरत का जहर पी लेता हूँ तब मैं हिन्दू बन जाता हूँ। (पृ. 69पेपरबैक सं. नौवाँ)

मुगल आक्रमणकारी, विजेता और साम्राज्य संस्थापक बाबर की प्रशंसा करते हुए उसी से कहलवाया गया है कि उसने अयोध्या के राम मन्दिर को तोड़कर मस्जिद नहीं बनवाई थी। वह उधर गया ही नहीं था। वहाँ इब्राहिम लोदी के समय से मस्जिद थी। इब्राहिम लोदी के मुताबिक उस वक्त राम की चर्चा भी नहीं थी। मतलब यह है कि वहाँ राम मन्दिर नहीं था। उत्खनन में प्राप्त प्रमाण की चर्चा नहीं हो सकी है। एक कोई महंत छत्रदास के द्वारा बाबर के पक्ष में तर्क दिया गया है।

अदीबे आलिया के मुताबिक भारत की मान्यताएँ यानी वैदिक मान्यताएँब्रह्म, पुनर्जन्म, अद्वैतवादये सब मिस्र की मान्यताएँ रही हैं। और ब्राह्मणवाद जड़ता का प्रतीक रहा है।

अदीबे आलिया वर्जना मुक्त आसक्ति के आनन्द के लिए बेवा सलमा के साथ मारिशस की एकान्त मधुयामिनी बिताते हैं। जब अदालत से थक जाते हैं तो सलमा इनके साथ हो जाती है। पहली प्रेमिका विद्या को ये दंगे में पाकिस्तान भेजकर मुस्लिम से निकाह करा देते हैं। सलमा एकाध पीढ़ी पहले धर्मांतरित हुई थी। वह उपनिषदों की आलोचना करती है। अदालत का अर्दली भी धर्मांतरित मुसलमान है। वह भी अपने पूर्वज राम के समय शम्बूक के प्राणदण्ड की चर्चा कर हिन्दू धर्म को हीन सिद्ध कर इस्लाम को बेहतर बताता है। यह है लेखक का वाम-इस्लाम का सेकुलर संगीत!

औरंगजेब और दारा के संघर्ष में इन्होंने दारा का पक्ष लिया है। और दारा की हार के लिए जयसिंह तथा जसवंत सिंह कि गदारी की निन्दा की है। काशी विश्वनाथ के विध्वंस के लिए स्वनाम धन्य श्री विश्वज्ञर पांडे की गवाही और सबूत से सिद्ध किया है कि औरंगजेब ने मन्दिर के भीतर एक रानी के साथ दुष्कर्म के कारण उसका ध्वंस किया था। और अन्य मन्दिरों के ध्वंस विद्रोह के केन्द्र हो जाने के कारण हुए थे। यह कमलेश्वर जी का वाम इतिहास है, सेकुलर संगीत है। इनकी दृष्टि में इस्लाम का तौहीद और अद्वैतवाद एक ही है। और भारत कभी हिन्दू राष्ट्र नहीं था।

इन्होंने चमत्कार दिखाया हैबोधिवृक्ष वैदिक सभ्यता, वर्णवाद और ब्राह्मणवाद के खिलाफ मुर्दाबाद के नारे लगाता है। और बुद्ध के द्वारा उपनिषद, पुनर्जन्म और देवगणसब दासता के सूचक घोषित होते हैं।

यदि उपन्यास के आरम्भ में कारगिल युद्ध की लापरवाही के लिए प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी और रक्षामन्त्री जार्ज फर्नांडिस की कटु आलोचना है तो उपन्यास के अन्त में मुस्लिम आतंकवाद पर नहीं कश्मीर के हिन्दुओं के पलायन पर नहीं, हिन्दू जागरण पर कठोर शाब्दिक प्रहार है। वे लिखते हैं“सन् 1990 में

सोमनाथ मन्दिर प्रांगण, प्रभाष पाटन से फिर जो चक्रवात चला था, वह अयोध्या, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र होता हुआ सन् 1998 में पोखरन पहुँच गया था।... रेगिस्तान की धमनियाँ फट गई थीं। धरती थर्रा गई थी।”

राम मन्दिर आन्दोलन और पोखरन विस्फोटदोनों पर घातक प्रहार है। यह सत्य है कि कमलेश्वर जी ने मुस्लिम लीग तथा जिन्ना के अलगाववादी आन्दोलन की चर्चा की है। पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद को विशेष जिम्मेवार माना है। पश्चिमी साम्राज्यवाद ने अपने स्वार्थ के लिए सर्वत्र देशों को बाँटा है। यह सच है। पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद तथा मुस्लिम लीग की दुरभिसन्धि भारत विभाजन के लिए उत्तरदायी है। यह सच सामने नहीं आ सका है। सैयद अहमद तथा इकबाल लोकमान्य तिलक के हिन्दू प्रतीकों के प्रयोग से अलगाववादी हो गए। यह कमलेश्वर जी की मान्यता है। जिन्ना तो व्यक्तिगत अपमान और राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा में लीगी नेता बन गए। चर्चिल के षड्यन्त्र के शिकार हो गए। इस तरह लेखक ने मुस्लिम राजनीति को कम और अंग्रेजों की नीति को अधिक जिम्मेवार माना है। पर हिन्दू का विरोध आदि से अन्त तक विराजमान है।

यह हैवाम-इस्लाम जुगलबन्दी का भारत विरोधी घृणित रूप।

साहित्य में यह जुगलबन्दी खूब चल रही है। यह प्रचार भी पाती है। यह बिकाऊ भी है।

प्राचीन भारत में ध्वज

गुंजन अग्रवाल*

सनातन धर्म में ध्वज का स्थान बहुत ऊँचा है। भारतवर्ष में ध्वज का उपयोग वैदिक काल से ही हो रहा है। वेदों की प्रसिद्ध उक्ति है

‘अस्माकं इन्द्र संभृतेषु ध्वजेषु अस्माकं या इषवः ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु अस्माकं देवासोऽवता हवेषु॥’¹

अर्थात्, हमारे ध्वज फहराते रहें, हमारे बाण विजय प्राप्त करें, हमारे वीर वरिष्ठ हों, देववीर युद्ध में हमारी विजय करवा दें।

इस मन्त्र में युद्ध के समय ध्वज लहराता रहना चाहिए। ऐसा वर्णन है। आर्यवीर ध्वज का ऐसा मान किया करते थे। और भी दो-तीन मन्त्र देखिए

‘उद्धर्षतां मघवन् वाजिनानि, उद् वीराणां जयतां एतु घोषः।
पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्तः उदीरताम्॥’²

अर्थात् हमारी सब सेनाएँ उत्साहित हों, हमारे विजयी वीरों की घोषणाएँ (आकाश में) गर्जती रहें, अपने-अपने ध्वज लेकर आनेवाले विविध पथों की घोषणाओं का शब्द यहाँ निनादित होता रहे।

यहाँ ‘केतुमन्तः घोषाः’ ध्वजों के साथ की हुई घोषणाएँ यह शब्द-रचना हमारी दृष्टि से महत्त्व की है। इससे यह स्पष्ट होता है कि घोषणा करते हुए आनेवाली टुकड़ियाँ ध्वज लेकर आया करती थीं।

‘अमी ये युधं आयन्ति केतून् कृत्वा अनकिशः।’³

अर्थात्, ये वीर अपनी सेना की टुकड़ियों के साथ अपने ध्वज लेकर युद्ध में उपस्थित होते हैं।

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक टुकड़ी के साथ एक ध्वज रहा करता, तथा उसके संरक्षण का भार उसी टुकड़ी पर होता था। नारायण हरि पालकर ने भी

* संपादक, ‘पटना परिक्रमा’ (पटना बिजनेस डायरेक्टरी), प्रकाशक : साहित्य भारती प्रकाशन, गोपी-कृष्ण पैलेस, भिखना पहाड़ी, पटना-800 004 (बिहार), दूरभाष : 0612-2680521, मो. : 09334518851

लिखा है, “पूर्वकाल में सेना की प्रत्येक टुकड़ी के साथ ध्वज रहता था और कभी-कभी उत्साह बढ़ाने के लिए प्रत्येक सैनिक ध्वज को धारण किया हुआ दिखता था। ऐसी जो ध्वजधारी टुकड़ियाँ रहती थीं, उन्हें ‘ध्वजिनी’ जैसे अर्थपूर्ण नाम से सम्बोधित किया जाता था। एक ध्वजिनी में 162 रथ, 162 हाथी, 486 घोड़े और 810 पैदल, अर्थात् कुल 1620 संख्या रहती थी। इतने लोग ध्वज को रणक्षेत्र में ले जाते समय दोनों हाथ लड़ने के लिए मुक्त रखते थे। ध्वज लहराता रहे, इसकी कोई योजना बनाकर ही ले जाते होंगे।”⁴

अथर्ववेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि सेना में ध्वज तथा दुन्दुभि (नगाड़ा)दोनों साथ रहा करते थे

*‘प्रामूं जय, अभि इमे जयन्तु, केतुमद् दुन्दुभिः वावदीतु ।
सं अश्वपर्णाः पतन्तु नो नरः अस्माकं इन्द्र रथिनो जयन्तु॥’⁵*

अर्थात्, हमारी सेना की विजय हो, हमारे ये वीर विजय प्राप्त करें, जिसके पास ध्वज लहरा रहा है, ऐसी यह दुन्दुभि बजती रहे, हमारे वीर घोड़ों के समान (वेग से) शत्रुओं पर टूट पड़ें तथा हमारे रथी विजयी हो जाएँ।

अब प्रश्न यह उठता है कि वैदिक युग में भारतीय ध्वज का स्वरूप कैसा था? ऋग्वेद में कहा गया है

*‘अदृश्रं अस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥’⁶*

अर्थात्, उगनेवाली सूर्य की रश्मियाँ, तेजस्वी अग्नि की ज्वालाएँ (फड़कनेवाले) ध्वज के समान दिखाई दे रही हैं।

इस मन्त्र से यह निश्चित होता है कि वैदिक काल में के ध्वज का आकार अग्नि-ज्वाला के समान था।

वेदों में कई स्थानों पर अग्नि-ज्वाला के आकार वाले ध्वज का वर्ण **भगवा** स्पष्ट किया गया है : **अरुणैः केतुभिः सह ।⁷; केतुं अरुणं यजध्वै ।⁸; चित्ररथं... केतुं रुशन्तम् ।⁹; दिवि न केतुः अधि धायि हर्यतः विव्यचत् वज्रःहरितः॥¹⁰; स्तवा हरी सूर्यस्य केतू॥¹¹; अदृशं अस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥¹²; एता उ त्या उषसः केतुं अक्रत । पूर्वे अर्धे रजसो भानुं अज्जते॥¹³; पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्री अकृत प्र केतुम् ।¹⁴; एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।¹⁵**

उपर्युक्त मन्त्रों में अरुण, अरुष, रुशत्, हरित, हरी, अग्नि, रजसो भानु, रजस् और सूर्यये नौ शब्द ध्वज का वर्ण निश्चित करते हैं। ‘हरित’ और ‘हरी’इन शब्दों से हल्दी के समान रक्त सदृश पीला रंग ज्ञात होता है। ‘सूर्य’ शब्द सूर्य का रंग बता रहा है। यह रंग भी हल्दी के समान ही है। ‘अरुण’ रंग यह उषाकाल के सदृश कुल

लाल रंग के आकाश का रंग है। ‘अरुष’ तथा ‘रुशत्’ये शब्द भी भगवे रंग के ही निदर्शक हैं। ‘रजस’ तथा ‘रजसो भानु’ये शब्द सूर्य किरणों से चित्रित धूल का रंग बता रहे हैं। इन मन्त्रों में ध्वज को ‘अग्नि ज्वाला, विद्युत्, उगता हुआ सूर्य तथा चमकनेवाला खंग’ये उपमाएँ दी हुई हैं। इसमें निर्णायक उपमाएँ ‘रजसो भानु’ तथा ‘अरुणः’ये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पदों में निदर्शित रंग भगवा ही है। इन नौ पदों से यद्यपि भगवे रंग की न्यूनाधिक छटाएँ बताई गई हैं, तथापि पीला तथा लालइन दो वर्णों के मिश्रण से होनेवाला और धूलसमूह के सदृश दिखाई देनेवाला रंग **भगवा** ही है।

सारांश यह है कि यज्ञ की ज्वालाओं के आकारवाला पवित्र भगवा ध्वज वैदिक युग से भारतवर्ष में फहरा रहा है। रामायणकाल में भी भगवान् श्रीराम का ध्वज भगवा (अरुण केतु) ही था। वेदों के महापण्डित पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (1867-1968) ने लिखा है, “श्री राम का ध्वज ‘अरुण केतु’ था। जब श्रीराम रावण से युद्ध करने के लिए तैयार हुए, तब इन्द्र ने अपना रथ तथा सारथी मातलि को श्रीराम के पास भेजा था। इन्द्र देवताओं के राजा थे, उनका ध्वज वेदवर्णित ‘अरुण केतु’ ही था।”¹⁶ महाभारत युद्ध (3139-3138 ई. पू.) में अर्जुन का ‘**कपिध्वज**’ भगवा ध्वज ही था। आद्य शंकराचार्य (509-477 ई. पू.) ने भारतवर्ष की चारों दिशाओं पर पाँच धामों पर भगवा ध्वज ही फहराया था। बद्रीनाथ मन्दिर पर प्रारम्भ से भगवा ध्वज ही है। सभी वैष्णव मन्दिरों पर भगवे ध्वज ही रहते हैं। सभी योगमठ, आचार्य-मठ तथा संन्यासियों के मठों पर के ध्वज भगवे ही होते हैं। सन् 1336 से लेकर 1565 तक विजयनगर साम्राज्य का ध्वज भगवा ही था। इसके पश्चात् सन् 1660 से छत्रपति शिवाजी (1630-1680) के साम्राज्य का ध्वज भगवा ही रहा। यह साम्राज्य विखण्डित होने के बाद भी कोल्हापुर और सतारा के वंशधरों के प्रासादों पर यही ध्वज लहराता आया है। सन् 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार (1889-1940) ने इसी भगवा ध्वज को अंगीकार किया था।

पुराणों में देवताओं के झण्डों का वर्णन मिलता है। भविष्य महापुराण¹⁷ में उल्लेख मिलता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में देवताओं और असुरों में जो भीषण युद्ध हुआ था, उसमें देवताओं ने अपने-अपने रथों पर जिन-जिन चिह्नों की कल्पना की, वे ही उनके ध्वज के प्रतीक-चिह्न बने। जिस देवता का जो वाहन होता था, प्रायः वही चिह्न ध्वजा पर भी अंकित हुआ। भगवान् विष्णु के ध्वज पर गरुड़ (गरुड़ध्वज), भगवान् शिव के ध्वज पर बैल (वृषभध्वज), ब्रह्माजी की ध्वजा पर कमल, सूर्य की ध्वजा पर व्योम, चन्द्रमा की ध्वजा पर नर, कामदेव की ध्वजा पर मकर, देवराज इन्द्र और देवी दुर्गा की ध्वजा पर हाथी, रेवत की ध्वजा पर घोड़ा, वरुण देव की ध्वजा पर कछुआ, वायुदेव की ध्वजा पर हरिण, गणेश जी की ध्वजा पर चूहा, ब्रह्मर्षियों की ध्वजा पर कुश, अग्निदेव की ध्वजा पर भेड़, यमराज की ध्वजा पर भैंसा और देव सेनापति कार्तिकेय की ध्वजा पर मुर्गे का चिह्न था।

भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में युद्ध में देवताओं द्वारा दानवों के पराजित होने पर इन्द्र के विजयोत्सव में मनाए गए 'ध्वज महोत्सव' का उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने दानवों को अपने ध्वज दण्ड से ठोंक-पीटकर जर्जर कर दिया था। इसी कारण इन्द्र ध्वज का नाम 'जर्जर' पड़ा।

महाभारत¹⁸ में महाभारत युद्ध में भाग लेनेवाले विभिन्न राजाओं के ध्वजों का वर्णन मिलता है। रायबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य ने लिखा है, "रथ पर मन्दिर के समान अण्डाकार शिखर रहता था। प्रत्येक वीर की ध्वजा या पताका का रंग तथा उस पर का चिह्न अलग रहता था। इस चिह्न से दूर से ही पहचाना जाता था कि यह वीर कौन है।... रथ पर ध्वज इस पद्धति से लगाए जाते थे कि अन्दर का योद्धा बाणों से आहत होने पर आपात्काल की स्थिति में ध्वज का सहारा ले सकता था।"¹⁹

कालिदास (प्रथम शताब्दी ई. पू.) ने लिखा है, "शत्रुओं ने अज पर इतने अस्त्र बरसाए कि उनका रथ टुक गया...अतएव अज का पता उनके ध्वजाग्र मात्र से ही लगता था।"

'ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः'²⁰

महाभारत में उल्लेख है कि अर्जुन का भयंकर ध्वज वानर के चिह्न से सुशोभित था। उस वानर की पूँछ सिंह के समान थी और उसका मुख बड़ा ही उग्र था

*'सिंहलांगलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम्॥
धनंजयस्ये संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।'²¹*

उद्योग पर्व²² में उल्लेख है कि अर्जुन का ध्वज एक योजन लम्बा था। वह ऊपर अथवा अगल-बगल में पर्वतों तथा वृक्षों में कहीं अटकता नहीं था

*'न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य ऊर्ध्वं तिर्यगयोजनमात्ररूपः ।
श्रीमान् ध्वजः कर्ण धनंजयस्य समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः॥'*

द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण (3228-3102 ई. पू.) के ध्वज पर गरुड़ और बलराम के ध्वज पर हल का चित्र था। कौरवों एवम् पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा पर स्वर्ण कमण्डल, वेदी, धनुष और काले मृगचर्म का चित्र था। भीष्म पितामह के रथ की ध्वजा पर पाँच तारों से युक्त ताड़ का पेड़ था। अंगराज कर्ण के ध्वज पर हाथी बाँधने की चाँदी की शृंखला बनी थी। कृपाचार्य के ध्वज पर सोने की वेदी और बैल का चित्र था। अश्वत्थामा के ध्वज पर धनुष और सिंह की पूँछ का चित्र था। दुर्योधन की ध्वजा पर नाग का चित्र अंकित था। धर्मराज युधिष्ठिर की ध्वजा पर चन्द्रमा सहित अनेक ग्रहों के चित्र सुशोभित थे। सिंधुराज जयद्रथ के ध्वज पर चाँदी के बने हुए वाराह का चित्र अंकित था। अभिमन्यु के ध्वज पर कर्णिकार वृक्ष और सारंगपक्षी का चित्र था। भीमसेन के ध्वज पर दहाड़ते हुए सिंह का चित्र था।

महाबली घटोत्कच के ध्वज पर रथ के पहिए पर बैठे गीध का चित्र था। सहदेव की ध्वजा में घण्टा, पताका और चाँदी के बने हंस का चित्र था। द्रौपदी पुत्रों की ध्वजाओं में क्रमशः धर्मराज, वायुदेव, इन्द्र और अश्विनी कुमारों के चित्र अंकित थे।

रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न और शाल्व के ध्वज पर मकर का चिह्न था। कलिंग देश के राजा श्रुतायुध के ध्वज पर अग्नि का चिह्न था। द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न के रथ की ध्वजा पर कचनार वृक्ष का चित्र अंकित था। भूरिश्रवा के ध्वज पर यूप का चिह्न था। पाण्ड्य देश के राजा पाण्ड्य के ध्वज पर सागर का चित्र था। मर्तिकावतक नरेश भोज के रथ की ध्वजा पर हाथी का चित्र था। शल्य के ध्वज पर सीता (हल से भूमि पर खींची गई रेखा) का चित्र था। शल का ध्वज चाँदी के गजराज के चित्र से सुशोभित था।

इसी तरह महाभारत में विभिन्न योद्धाओं के ध्वजों के रंगों का भी उल्लेख मिलता है। अर्जुन का 'कपिध्वज' तो भगवे रंग का था ही। कर्ण और जयद्रथ की ध्वजा सफेद रंग की थी। कृपाचार्य की ध्वजा नीले रंग की थी। घटोत्कच और केकय राजकुमारों की ध्वजाएँ लाल रंग से रंगी हुई थीं।

भविष्य महापुराण में देवर्षि नारद ने ब्रह्माजी द्वारा वर्णित ध्वजदण्ड के आकार-प्रकार का वर्णन करते हुए कहा है कि ध्वजदण्ड सीधा, बिना टूटा हुआ, प्रासाद के व्यास के बराबर लम्बा, अथवा 4, 8, 10, 16 या 20 हाथ लम्बा होना चाहिए। 20 हाथ से अधिक लम्बा न हो। उसकी गोलाई चार अंगुल होनी चाहिए। अग्नि महापुराण²³ इस बात का निर्देश करता है कि जिस ध्वज को प्रासाद पर लगाना हो, वह शिखर की ऊँचाई का आधा और द्वार की शाखा से दुगुना ऊँचा होना चाहिए।

ईश्वरचन्द्र शास्त्री विरचित 'युक्तिकल्पतरु' के अनुसार "प्राचीन भारत में ध्वजदण्ड की लम्बाई कम-से-कम दस हाथ और अधिक-से-अधिक बीस हाथ होती थी। सेना में ध्वज की लम्बाई पद-मर्यादा की सूचक होती थी। एक सहस्र से कम सेनावाले सेनानायक का अपना कोई ध्वज नहीं होता था। एक सहस्र सैनिकों के नायक का ध्वज दस हाथ ऊँचा होता था, दो सहस्रवाले का ग्यारह हाथ और तीन सहस्रवाले का बारह। इस क्रम से अपुताधिक अर्थात् दस सहस्र की सेना के संचालक का ध्वज बीस हाथ ऊँचा रहता था। यह ऊँचाई की अन्तिम सीमा थी।" इसी ग्रन्थ में आगे कहा गया है कि ध्वजदण्ड बहुधा लकड़ी का हुआ करता था। इसके लिए बाँस, बकुल, शाल, पलाश, चंपक, नीप (अशोक वृक्ष का एक प्रकार या कदंब), नीम और विराज नामक वृक्षों की लकड़ी काम में लाई जाती थी। इनमें बाँस ही सर्वश्रेष्ठ और सम्पत्तिकारक समझा जाता था। इसका एक अभिप्राय यह भी हो सकता है कि बाँस में झुकने का गुण होने के कारण वह सहज में टूट नहीं सकता और इस प्रकार ध्वजभंग का भय कम रहता है।

वराहमिहिरकृत 'बृहत्संहिता' में ध्वजदण्ड के लिए लकड़ी के चुनाव से लेकर पूजनोपरांत महाध्वज के विसर्जन तक का बड़ा विशद वर्णन मिलता है। उससे ध्वजों

के अलंकरणदिकों के विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसी से यह भी पता चलता है कि ध्वजोत्थापन बड़े भव्य समारोह से हुआ करता था। अनेक वाद्यों के गम्भीर घोष, ब्राह्मणों के वेद-पाठ तथा मंगलाशीर्वाद, जनता द्वारा जय-जयकारादि मंगल शब्दों के उच्चारण एवं प्रणाम इत्यादि के साथ धीरे-धीरे महाध्वज की स्थापना होती थी

*‘अविरत जनरावं ममलाशीः प्रणामैः पटुपटह मृदगैः शंखभेर्यादिभिश्च।
श्रुतिविहितवचोभिः पापठद्भिश्च विप्रैः, अशुभरहित शब्दं केतुमुत्थापयेत्॥’²⁴*

भविष्य महापुराण में ध्वजारोपण की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ध्वज का पहले निर्माण कर उसका अधिवासन करें। लक्षण के अनुसार वेदी का निर्माण करें, कलश की स्थापना कर सर्वौषधि-जल से ध्वज को स्नान कराएँ। वेदी के मध्य में उसे खड़ा कर सभी उपचारों से उसकी पूजा करें और उसे पुष्पमाला पहनाएँ, दिक्पालों को बलि देकर एक रात तक अधिवासन करें। दूसरे दिन भोजन कर शुभ मुहूर्त में स्वस्तिवाचन आदि मंगल-कृत्य सम्पन्न कर ध्वज को यथास्थान आरूढ़ करें। ध्वजारोहण के समय अनेक प्रकार के वाद्यों को बजाएँ, ब्राह्मणगण वेद-ध्वनि करें। ध्वजारोहण के समय इन मन्त्रों को पढ़ना चाहिए

*‘एहोहि भगवन् देव देववाहन वै खग॥
श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित।
व्योमरूप महारूप धर्मात्मस्त्वं च वै गतेः॥
सानिध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन् साक्षी च ध्रुवतां ब्रज।
कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ॥
ॐ एहोहिभगवन्नीश्वरविनिर्मित
उपरिचर²⁵ वायुमार्गानुसारिञ्छ्रीनिवास*

**रिपुध्वंस यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु सानिध्यं शान्ति स्वस्त्ययनं च मे।
भयं सर्वविघ्ना व्यापसरन्तु॥’²⁶**

स्वच्छ दण्ड में ध्वज को प्रतिष्ठित करें तथा ध्वज का दर्शन करें। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो ध्वजारोपण करता है, वह श्रेष्ठ भोगों को भोगकर सूर्यलोक को प्राप्त करता है।

‘बृहत्संहिता’ में ध्वज को उतारने की विधि का भी उल्लेख मिलता है। ध्यान इस बात पर दिया जाता था कि ध्वज धीरे-धीरे उतारा जाए, पक्षी के सदृश एकाएक नीचे न गिरने पाए

*‘तथा रक्षेन्नृपः केतुं न पतेच्छकुनिर्यथा।
शनैः शनैः पातयेत्तं यथोत्थापनमादितः॥’²⁷*

राजा को ध्वज की रक्षा सभी प्रकार से करनी पड़ती थी। ध्वजभंग होना राजा के लिए अत्यन्त अशुभ माना जाता था। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में कहा है कि युद्ध में कटकर गिरती हुई ध्वजाओं के साथ ही कौरवों के यश, अभिमान, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा एवं राज्य के साथ ही जीवन का भी पतन हो गया।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद, 10.103.11; अथर्ववेद, 19.13.11
2. अथर्ववेद, 3.19.6
3. वही, 6.103.3
4. भगवा ध्वज, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, 1992 ई., पृ. 30
5. अथर्ववेद, 6.126.3
6. ऋग्वेद, 1.50.3
7. अथर्ववेद, 11.10.2
8. ऋग्वेद, 6.49.2
9. वही, 10.1.15
10. ऋग्वेद, 10.96.4; अथर्ववेद 20.30.4
11. ऋग्वेद, 2.11.6
12. वही, 1.50.3
13. वही, 1.92.1
14. वही, 1.124.5
15. अथर्ववेद, 5.21.12
16. आर्यों का भगवा ध्वज, प्रकाशक स्वाध्याय मण्डल, औध, 1947 ई, पृ. 18
17. भविष्य महापुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय 138
18. महाभारत का वन पर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व और कर्ण पर्व
19. महाभारत : एक मीमांसा, 1921 ई.
20. रघुवंश, 7.60
21. महाभारत, द्रोण पर्व, 105.8-9
22. वही, उद्योग पर्व, 142.5
23. अग्नि महापुराण, अध्याय 59
24. बृहत्संहिता, 43.59
25. महाभारत (आदि पर्व, 63.20) में उल्लेख है कि राजा उपरिचर ने नवीन संवत्सर के प्रथम दिन (चैत्र शुक्ल) प्रतिपदा को इन्द्र द्वारा दी हुई ध्वजा का पूजन किया था।
26. भविष्य महापुराण, ब्राह्म पर्व, 138.73-76
27. बृहत्संहिता, 43.64

न बाँटिए कबीर को : सवर्णवादी कठघरे से कबीर की मुक्ति*

कामेश्वर पंकज*

संत कबीरदास हिन्दी साहित्य में आलोचना और इतिहास के सर्वाधिक विवादग्रस्त कवि रहे हैं। कबीर की रचना और परम्परा के विश्लेषण में इनके समीक्षक लगभग एकमत हैं। सबसे अधिक विवाद (?), विवाद भी नहीं अनावश्यक विश्लेषण विस्तार, कबीर के जीवन-वृत्त को लेकर हुआ है। कबीर की जाति, सम्प्रदाय, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, गुरु, ज्ञान, भाषा, ब्रह्म-ज्ञान की दिशा आदि पर इतनी चर्चा हुई कि कबीर का साहित्यिक अवदान ढक गया। वस्तुतः कबीर के समीक्षकों ने कबीर के साहित्य से अधिक उनकी जीवनी में अधिक रुचि ली है। यह रुचि जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से डॉ. सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु' का विश्लेषण आरम्भ होता है। 'न बाँटिए कबीर को' कबीर पर आधारित ऐसी पुस्तक है, जिसमें कबीर के समकालीन समाज का आकलन और चित्रण है, साथ ही साथ कबीर को सवर्णवादी मानसिकता के कठघरे से निकालने का प्रयास भी है। 'न बाँटिए कबीर को' तीन अध्यायों में ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक है। पुस्तक का आमुख 'आवेदन' के नाम से लिखा गया है, जिसमें लेखक ने दावा किया है कि, "अब तक कबीर के अध्ययन में कागज काले किए जा रहे हैं।" (पृष्ठ 5)। कबीर को कबीर की दृष्टि से देखने का प्रयास अब तक नहीं हुआ है। लेखक ने स्पष्ट कहा है कि इस पुस्तक में कबीर का अध्ययन केवल आदमी के रूप में किया गया है (पृष्ठ 5)। डॉ. प्रज्ञाचक्षु ने कबीर के समीक्षकों के दृष्टिकोणों पर अँगुलियाँ रखी है, जिनके शीर्षक पढ़कर ही लेखक की मंशा प्रकट हो जाती है, जैसे, "क्या है हरिऔध जी की भ्रामक धारणा का भावार्थ; दुविधा में द्विवेदी जी क्यों; चतुर्वेदी जी की चतुराई; क्या है शुक्ल जी की बौद्धिक कृपणता; डॉ. धर्मवीर की धारणा भी पूर्वाग्रहपूर्ण" इत्यादि। लेखक का मानना है कि कबीर का अध्ययन और विश्लेषण बाँट-बाँट कर किया गया है। साहित्य के विवेचन से अधिक उनके 'कुजात' को अधिक उछाला गया है। वह शायद इसलिए कि कबीर की वाणी यदि समाज में समादृत हो गई तो

+ 'न बाँटिए कबीर को', डॉ. सुकन पासवान, प्रज्ञाचक्षु साधना पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2007

* समीक्षक : डॉ. कामेश्वर पंकज, के.बी. झा कालेज, कटिहार।

A DHĀRĀNĪ IN OLD TURKISH

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

द्विन्नि सुमि वदनि
प्रपपति परतिवधि इतनि चस्तनि
अपि मननिकि वैरवनि कम-
शिरिस्ति किनि कन्त कन्तक
पतर् मनिर् मनिचरि परतति
उपपञ्चिक सतकिरि फीपति
पुनेकि कन्तारकुचिरि गुपति
अम् अतवकि जन्तुमन्नीन्
इलिकि चरयोनि चिचिचरि
जम कन्तवि तिकचकुसि जम
मन्तवि पञ्चलकन्ति धुमनि तिनि
अम् कुत्रको पिले तुपनि तर्गतन-
नि

यस आर्यको नर-
राजो वनपञ्चस् चित्रसेनस्
न गन्धर्वो दीर्घशक्तिस् च
मातसिः पञ्चालगन्धः सुमगिर् दीर्घो
यसः सपरिवारस् चिकली चिकष्ट-
कः

आचार्य रघुवीर के संकलन से साभार

समाज की 'मनुवादी व्यवस्था' में परिवर्तन की हवा चल पड़ेगी। यह 'हवा' ब्राह्मण समाज के विपरीत चलेगी। इसलिए कबीर के समीक्षक हरिऔध जी कबीर को पढ़ते समय ब्राह्मणों को सावधान करते हैं, "कबीर का अध्ययन करते समय ब्राह्मणों को चाहिए कि वे सम्मान से विष के समान बचें और अपमान की अमृत के तुल्य इच्छा करें" (पृष्ठ 26)। लेखक का मानना है कि कबीर के प्रभाव को रोकने के लिए उनको 'कुजात' ठहराना आवश्यक थासो समीक्षकों ने किया। डॉ. प्रज्ञाचक्षु कहते हैं कि, "कबीर ने अपने को समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, भाषाशास्त्री, वैयाकरण, विद्वान, समाज सुधारक या दलितोद्धारक कब कहा है कि उन्हें विभाजन के महावन में बेमौके घेरने-पेरने का प्रयास किया जा रहा है" (पृष्ठ 6)। लेखक इन व्यर्थ के जालों से पृथक कबीर के दृष्टिकोणों पर प्रकाश डालते हैं। ऐसा करते वक्त कबीर को कबीर की दृष्टि से; कबीर जैसे लोगों की दृष्टि से देखने की कोशिश की गई है। कबीर जैसे लोगों से तात्पर्य है अछूतों, दलितों, उपेक्षितों, शूद्रों की दृष्टि से। लेखक का मानना है कि जिन वेद शास्त्रों ने शूद्रों और दलितों को वेद वर्जित कर रखा है कबीर उनके रहनुमा हैं। कबीर उनको राह दिखाने वाले कवि हैं। कबीर इन्हीं वेद वर्जित मानव समुदाय को वाणी देते हैं और उनके लिए हिन्दू धर्म से पृथक् धर्म के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। "कबीर खुद अपने जैसे श्रमिकों और कारीगरों का धर्म खड़ा करना चाहते थे" (पृष्ठ 19)। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल युग पुरुष माने जाते हैं। कबीर पर उनकी कृपणता परवर्ती समीक्षकों को भी रास नहीं आई। परन्तु लेखक प्रज्ञाचक्षु ने भिन्न अर्थों में उनकी 'कृपणता' को लिया है। शुक्ल जी ने कबीर को उधारखोर माना है। कबीर साहित्य में कबीर का अपना कुछ नहीं है वेद का मायावाद, इस्लाम का एकेश्वरवाद आदि। लेखक प्रज्ञाचक्षु का मानना है कि शुक्ल जी ने कबीर को विदेशी प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति सिद्ध किया है। यही लेखक कहना चाहते हैं कि, "कबीर ने देश की पचासी प्रतिशत देशी जनता का प्रतिनिधित्व किया है। केवल पन्द्रह प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करके तुलसी कबीर से ज्यादा भारतीय नहीं हो जाते हैं।" (पृष्ठ 72) लेखक प्रज्ञाचक्षु के विश्लेषण और तर्क में वह शक्ति दिखती है कि भले ही आप कई स्थलों पर इनसे सहमत नहीं हों आपके संस्कार या किताबी संचित ज्ञान आप को रोक रहें हो लेकिन आपके मन के 'चोर' को छू लेता है। हरिऔध जी कबीर को घमण्डी गैर शालीन कहते हैं तो प्रज्ञाचक्षु तुलसी की 'चौपाई' प्रस्तुत कर कहते हैं कि नारी और शूद्रों को इन अपमानजनक शब्दों से सम्बोधित करना कहाँ की शालीनता और भद्रता है।

पुस्तक का द्वितीय अध्याय कबीर के धर्म पर केन्द्रित है और निष्कर्ष यह है कि, "कबीर का धर्म अखिल विश्व के मानव का धर्म है।" (पृष्ठ 158) इसमें कबीर की स्वीकारोक्तियों को उद्धृत कर के यह बताने का प्रयास किया गया है कि कबीर किसी धर्म के अनुयायी नहीं थे। वे मानवता के पक्षधर थे। कबीर को धर्मों में बाँटना

समीक्षकों की अल्पज्ञता है। जिस तरह कुसुम को बाँटकर उनके सौन्दर्य की रक्षा नहीं हो सकती, उसी तरह कबीर को जाति-धर्म, सम्प्रदाय आदि में बाँटकर उनके साथ न्याय नहीं हो सकता है। लेखक प्रज्ञाचक्षु ने कबीर को हिन्दुत्व के घेरे से निकालने का प्रयास बार-बार किया है। लेकिन कबीर की सहज साधना में वैदिक शब्दावली, साधना के आयाम, षड्चक्र, कुण्डलिनी जागरण आदि की परिकल्पना हिन्दू निरपेक्ष कैसे है? इसकी व्याख्या लेखक ने नहीं की है। इसके अभाव में कबीर को हिन्दुत्व से पृथक करना पूर्वाग्रह प्रतीत होता है।

पुस्तक का तृतीय अध्याय 'अभिन्न कबीर' महत्त्वपूर्ण अंश है। यह लेखक का कथ्य भी है। इसमें कबीर की शक्ति, कबीर की भक्ति, धर्म, भगवान, महात्म्य आदि का विद्वत्पूर्ण विश्लेषण है। इस विश्लेषण में कबीर के समीक्षकों के दृष्टिकोणों का समर्थन और संशोधन भी किया गया है। इसमें महत्त्वपूर्ण यह है कि लेखक ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि कबीर ने 'ऐसा' या 'वैसा' क्यों कहा है इस विश्लेषण में लेखक सजग हैं। लेखक कबीर कालीन समाज पर पूरी तरह से दृष्टि रखता है और उसके आलोक में कबीर की रचना की प्रासंगिकता को व्यक्त करता है। लेखक का मानना है कि कबीर को कहने वाले धर्म का बैरी तथा सामाजिक संरचना का शत्रु भी कहते हैं। लेकिन सच तो इतना मात्र है कि कबीर से बढ़कर निर्वैर तथा मानव हितैषी का अब तक संसार में जन्म ही नहीं हुआ है। लेखक प्रज्ञाचक्षु मूलतः एक चिंतक हैं। पुस्तक में कबीर को इसी दृष्टि से देखने का प्रयास है। इसमें लेखक का चिंतनबिन्दु वर्ण व्यवस्था के प्रदूषण पर है। वे मानकर चलते हैं कि राम और कृष्ण यदि अवर्ण होते तो उन्हें भी भगवान मानना दुष्कर होता। कबीर को सही स्थान नहीं मिलने का मूल कारण यही है। कबीर की रचनाओं में आम आदमी के उस हक-हकूक की बात है, जिसे "वैदिक धर्म परम्परा को माननेवालों ने वेद-विरुद्ध बताया है। कबीर को साहित्य और समाज से खारिज कर देना ही सवर्ण-समीक्षा का लक्ष्य रहा है। ऐसा वे कबीर को गलत ठहरा कर ही कर सकते थे। इसलिए उन समीक्षकों ने कबीर की जाति पर प्रहार किया कुजात ठहरा दो, सब कुछ ठहर जाएगा।" (पृष्ठ 13) इस ठहराव के पत्थर को हटाने की चेष्टा इस पुस्तक में है। डॉ. प्रज्ञाचक्षु भारतीय चिंतन परम्परा के बौद्ध दर्शन से प्रभावित हैं। आधुनिक काल में वे महात्मा फुले और बाबा साहेब अम्बेदकर की विचारधारा से सम्प्रेषित हैं। इसी आलोक में कबीर को देखा गया है। पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट है कि लेखक ने कबीर-साहित्य का अध्ययन गम्भीरता से किया है और उनके समीक्षकों को भी गम्भीरता से लिया है। यहाँ भी समीक्षा के उसी स्थल को लिया गया है, जहाँ पर कबीर की जाति-धर्म की चर्चा है। कई स्थलों पर डॉ. प्रज्ञाचक्षु इनने तीखे हो जाते हैं कि समीक्षकीय शालीनता लाँघ जाते हैं। डॉ. प्रज्ञाचक्षु से आप असहमत हो सकते हैं परन्तु उत्तर के लिए सहज प्रस्तुत होना कठिन होगा। यही इस पुस्तक की शक्ति और सार्थकता है।

हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक*

देवेन्द्र कुमार देवेश*

प्रो. शिवगोपाल मिश्र एवं डॉ. विष्णुदत्त शर्मा के संयुक्त संपादन में प्रकाशित 'हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक' नामक पुस्तक 25 नाटकों का एक महत्त्वपूर्ण संकलन है। यदि मैं इस पुस्तक को महत्त्वपूर्ण कह रहा हूँ, तो यह समीक्षा-कर्म की औपचारिकता मात्र नहीं है। वास्तव में यह पुस्तक अनेक कारणों से पठनीय, मननीय और संग्रहणीय बन पड़ी है।

'हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक' पुस्तक हमारे सामने वैज्ञानिक नाटकों के ऐतिहासिक विकास-क्रम को तो रखती ही है, पिछले पचास वर्षों के कालखंड में समय-समय पर प्रकाशित वैज्ञानिक नाटकों के वैविध्यपूर्ण संसार को प्रातिनिधिक ढंग से उजागर भी करती है।

इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है इस पुस्तक की भूमिका, जिसमें नाटक की परिभाषा और विकास यात्रा को संक्षेप में सामने रखते हुए हिन्दी में नाटक विधा के प्रवेश और विशेषकर विज्ञान नाटकों के तत्त्वों का परिचय और वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। प्रवृत्तिगत विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उदाहरण स्वरूप नाटकों के उल्लेख भी किए गए हैं, जो पुस्तक में संकलित भी हैं।

पुस्तक में शामिल पहला नाटक गोविन्द वल्लभ पंत कृत 'अंधविश्वास' है, जो 1955 में लिखा गया था। यह नाटक प्रख्यात वैज्ञानिक गैलीलियो पर उसकी वैज्ञानिकता के लिए अपराधी घोषित किए जानेवाले मुकदमे पर आधारित है।

दूसरे नाटक के रूप में प्रख्यात हिन्दी साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'अमृत की खोज' नाटक का एक अंश 'चंद्रलोक' शामिल किया गया है। इस नाटक पर अलग से एक समीक्षात्मक आलेख भी प्रकाशित है। हिन्दी के इस प्रख्यात नाटककार द्वारा वैज्ञानिक नाटक लिखने के प्रयास को भूमिका में एक नजीर के रूप में सामने रखते हुए प्रकारांतर से अन्य लेखकों का आह्वान किया गया है कि वे

* साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।

+ समीक्षित पुस्तक : हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक, संपादक : डॉ. शिवगोपाल मिश्र, डॉ. विष्णुदत्त शर्मा, पृष्ठ : 248, मूल्य : 210 रुपए, प्रकाशक : शोध प्रकाशन अकादमी, 5/48, वैशाली, गाजियाबाद (उ.प्र.)

गंभीरतापूर्वक इस ओर प्रवृत्त हों।

साहित्य और विज्ञान के परस्पर समावेश के साथ उत्कृष्ट रचना के लिए यह जरूरी है कि लेखक जिन वैज्ञानिक तथ्यों अथवा घटनाओं को अपनी रचना में उठा रहा है, उनसे वह भली-भाँति परिचित तो हो ही, रचना-विधा की शिल्पगत प्रस्तुति और भाषा पर भी उसका अधिकार हो। इस दृष्टि से डॉ. वर्मा के 'चंद्रलोक' को प्रेरणास्पर्द बताया गया है।

विज्ञानपरक रचना के नाम पर दो तरह की रचनाएँ की जा रही हैं। पहली, वैज्ञानिक आधार देते हुए अघटित घटना (फंतासी) की परिकल्पना तथा दूसरी, वैज्ञानिक सिद्धांतों, परिघटनाओं को समझाने अथवा वैज्ञानिक चेतना जगाने के लिए यथार्थानुकूल घटना की परिकल्पना।

पहली कोटि में संकलन के निम्नांकित नाटकों को रखा जा सकता है 'चंद्रलोक' (रामकुमार वर्मा), 'डायनासौर का शिकार' (धनराज चौधरी), 'पहले मानव से एक मुलाकात' (मनोज पटौरिया) और 'रक्त का बँटवारा' (विष्णुदत्त शर्मा)। इन नाटकों में 'चंद्रलोक' तो पूरी तरह फंतासी ही है, जबकि अन्य नाटकों में फंतासी-कल्पना के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों को उद्घाटित किया गया है।

दूसरी कोटि में संकलन की निम्नांकित रचनाएँ आती हैं 'अंधविश्वास' (गोविन्द वल्लभ पंत), 'श्वेतक्रांति' (प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल'), 'अल्बर्ट आइंस्टीन' (पी. के. डीन), 'एक्स-रे' (राजीव श्रीवास्तव), 'शोर' एवं 'तुम खूनी हो' (अज्ञात), 'जल ही जीवन' (अजय गौतम), 'गाँव का रखवाला' (शशिप्रभा श्रीवास्तव), 'सफेद खून' (विष्णुदत्त शर्मा), 'रोशनी की सवारी' (शशिप्रभा श्रीवास्तव), 'रेडियो तरंगों की खोज' एवं 'पर्यावरण के प्रहरी' (देवेन्द्र मेवाड़ी)। ये सभी नाटक परिकल्पित घटनाओं के माध्यम से किसी-न-किसी यथार्थ अथवा वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन करते हैं तथा संतुलित मानवीय जीवन के लिए हमें सजग और सचेत करते हैं।

संकलित नाटकों की एक तीसरी कोटि भी है, जिसमें मानवेतर जीवों अथवा अजैविक तत्त्वों को नाटक का पात्र बनाया गया है अर्थात् उनका मानवीकरण कर उन्हें बोलते-बतियाते दिखाकर नाट्य-रचना के माध्यम से विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांतों, तथ्यों और परिघटनाओं को उद्घाटित किया गया है तथा वैज्ञानिक चेतना के संचार का प्रयास भी किया गया है। ऐसे नाटकों में शामिल हैं 'बैकटीरिया अदालत में' (प्रेमानंद चंदोला), 'हाइड्रोजन' (उदय प्रकाश), 'गैस सभा में हंगामा' (अभीष स्वामी), 'पोटैशियम' (विजय कुमार सेठी), 'मैं नदी आँसू भरी' (अज्ञात), 'मेरा दम घुटता' (पंकज चतुर्वेदी), 'बरगद का न्याय' (विनोद मिश्र), 'जीन कुंडली' (कविता तिवारी) तथा 'प्रकृति और मनुष्य' (विजय शंकर पांडेय 'पुष्प')।

मानवीय जीवन-शैली पर वर्तमान में मनोरंजन जिस प्रकार हावी है, उसके

कारण यह दुःखद है कि वैज्ञानिक नाटक बहुत कम लिखे जा रहे हैं। संपादक द्वय ने भी इस ओर इशारा किया है। वास्तव में शिक्षा को और उसमें भी विज्ञान जैसे शुष्क विषय को मनोरंजन के साथ जोड़कर अभिनव प्रयोगों के साथ प्रस्तुत किए जाने की जरूरत है। वैज्ञानिक नाटकों के लेखन-मंचन की अभिवृद्धि में शैक्षिक संस्थाओं को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए, लेकिन वहाँ भी फूहड़ मनोरंजन का मानो आधिपत्य-सा है।

ऐसी परिस्थितियों में 'हिन्दी में वैज्ञानिक नाटक' नामक यह पुस्तक सुखद पाठ की अनुभूति से सराबोर करती है। दो-तीन लेखकों के एक से अधिक नाटक संकलित हैं यदि दुहराव से बचा जाता तो अच्छा होता। लेखकों के संक्षिप्त परिचय भी परिशिष्ट में दिया जाना श्रेयस्कर होता।

भूल सुधार

चिन्तन-सृजन के पिछले अंक (वर्ष 5, अंक 3) में डॉ. रमेश चन्द्र शाह द्वारा नन्दकिशोर आचार्य की पुस्तक 'साहित्य का अध्यात्म', (लेखक : नन्दकिशोर आचार्य, प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन मन्दिर, नेहरू मार्ग (दाऊजी रोड), बीकानेर, प्रथम संस्करण : 2006 ई., पृष्ठ 160, मूल्य 175/- रुपए) की समीक्षा प्रकाशित हुई थी, जिसमें पुस्तक ब्योरा की जगह किसी लेखक का परिचय छप गया था। प्रेस द्वारा की गयी इस भयंकर भूल के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

सम्पादक

पाठकीय प्रतिक्रिया

'चिन्तन-सृजन' के जन.-मार्च 08 का आपका संपादकीय भारत के नागरिक समाज की आत्मतुष्ट नीड को झिंकोड़ कर जगाने का अत्यन्त सामायिक तथा सार्थक उपक्रम है। एकदम सटीक, आँख खोलने वाले। भारत द्रोहियों एवं भितरघातियों की कारगुजारियों को यथावत् उघाड़कर आपने शुरूआत की है, जिनकी ओर लगता नहीं सामान्यजनों, यहाँ तक कि पढ़े लिखे नागरिकों तक का ध्यान जाता है। कितने लोग जानते और इस जानने का निहितार्थ समझते हैं कि नेपाली प्रचण्ड के निर्माण में जे.एन.यू. का योगदान है या मणिपुर में अलगाववाद का आरंभ कम्युनिस्ट हिजम इरावत सिंह ने किया था। यह कितना शर्मनाक और देशद्रोही तथ्य है कि "इस देश में चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश समर्थक लोगों/संगठनों की कमी नहीं है"। जम्मू-कश्मीर में चल रही खतरनाक पहल की ओर भी आपने ध्यान दिया है। समाचार-माध्यमों की गैरजिम्मेदारी, काहिली को भी आपने सही-सही पकड़ा उघाड़ा है। यह तथ्य है कि "तकनीकी-वैज्ञानिक शब्दावली आयोग ने शब्दावली निर्माण का काफी काम किया, जिसका विल्कुल प्रयोग नहीं किया जाता"। क्या यह राष्ट्रीय अपब्यय का जीता-जागता दृष्टान्त नहीं? (इसी तरह, प्रकारान्तर से पुष्पपाल सिंह का इसी अंक में छपा लेख लोक में प्रयुक्त व्यंजनापूर्ण शब्दावली के प्रति उदासीनता को दर्शाता है और स्वयं हिन्दी के सशक्तीकरण के सबसे बड़े आंतरिक संसाधन-स्रोत पर सही बल देता है।) दूसरा संपादकीय मीडिया की सुस्ती, काहिली को ही नहीं, शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त अंधेपन और रीढ़हीनता का भी सांकेतिक पर्दाफाश करता है। सम्पादकीय के उपसंहार में पूछे गये प्रश्न का उत्तर 'हाँ! हाँ! हाँ!' आसेतु हिमालय गूँजने लगे गूँजता रहे ... तभी भावनात्मक अलगाव के 'राष्ट्रीय शर्म' सरीखे प्रयासों के (जिनमें राज ठाकरे जैसे देशरक्षकों का मुखौटा पहने देशतोड़क बेशर्मा से शामिल हैं) के विरुद्ध जरूरी लड़ाई लड़ी जा सकती है।

यह किस पुस्तक की समीक्षा है, पता नहीं चलता। मेरी 'रिब्यु' का अनर्थकारी फुटनोट देखें आचार्य जी की पुस्तक के बारे में व्योरे गायब हैं। उसकी जगह किसी का पता छपा है। यह भूल कैसे हो गयी?

- रमेशचन्द्र शाह, एम-4, निरालानगर, भदभदा रोड़, भोपाल-462003।

प्रेस की गलती से हुई इस भयंकर भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। हम भूल-सुधार सम्बन्धी जानकारी इस अंक में अन्यत्र छाप रहे हैं। - **संपादक**

‘चिन्तन-सृजन’ का जन-मार्च, 2008 अंक वैचारिक-सांस्कृतिक द्वन्द्व के मध्य चिंतन का एक आधार प्रदान कर रहा है।

डॉ. लोकेश चन्द्र ने अपने शोधपरक आलेख में जापान में अधिष्ठित सरस्वती और लक्ष्मी(श्री) का प्रामाणिक विवेचन किया है। इससे पूर्वी एशिया की संस्कृति पर भारतीय प्रभाव का सम्यक रूप सामने आ गया है।

श्री यशदेव शल्य ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय दर्शन के द्वन्द्व को स्वातंत्र्यपूर्व दार्शनिक जागरण के प्रकाश में प्रस्तुत किया है। आश्चर्य है कि स्वतंत्र भारत में महर्षि दयानन्द के त्रैतवाद, स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी रामतीर्थ के अद्वैत समता दर्शन और योगी अरविन्द के अद्वैतवादी योग के नये प्रयोग पर चर्चा अवरूद्ध सी हो गयी। फ्रायड, मार्क्स और सार्त्र ही छा गये। ऐसा नहीं होना चाहिए था। मुझे तो लगता है कि विवेकानन्द द्वारा व्याख्यायित अद्वैत समतादर्शन ही पश्चिम के तथाकथित समतावादी चिंतन का उत्तर है। इस युग के द्वन्द्व का शासन इसी से संभव है। लेखक द्वय ने ‘नक्सलवाद: संवाद मिथक और यथार्थ’ पर प्रमाण के साथ प्रकाश डाला है। निस्संदेह नक्सलवाद चीन से प्रेरित सत्तावादी राजनीति की हिंसात्मक रणनीति है। पर यह भी सच है कि नक्सलवाद के पनपने की भूमि रही है आरा-जहानाबाद-गया में पूर्व जमीन्दारों तथा बड़े किसानों का व्यवहार जो खेतिहार मजदूरों के साथ अच्छा नहीं रहा है। उन्हें उकसाने-भड़काने और हथियार थमाने का मौका मिल गया। वे ध्वंस का काम ले रहे हैं।

डॉ. कृष्ण चन्द्र गोस्वामी ने दो अलग ग्रंथों के आधार पर सन् 57 के स्वातंत्रता संग्राम की दो दृष्टियों से परिचय कराया है। परन्तु मुख्य दृष्टि तो स्वतंत्रता की आकांक्षा रही है। वह मुख्य रूप में सिपाहियों में रही है।

श्री परमानन्द पांचाल ने सूफी फकीर सरमद के निर्भीक टकराव तथा कहरपंथी औरंगजेब के हुकम से शहादत का अभिलेख प्रस्तुत किया है। स्मरणीय है कि हिन्दी के सूफी कवियों को मात्र काव्य लेखन का उद्देश्य रहा है। अधिकांश सूफी फकीर इस्लाम के प्रचार और अपने शाह की प्रतिष्ठा के लिए सक्रिय थे। पर तेरहवीं सदी के सीदी मौला और सत्रहवीं सदी के सरमद शुद्ध रूप से फकीर थे। दोनों की शहादत हुई तुर्क-मुगल शाहों के द्वारा ही। अजमेर वाले ख्वाजा ने गोरी की विजय में मदद की थी और भारत में तुर्क हुकूमत को दुआएँ दी थीं।

रमेशचन्द्र शाह ने श्री नन्द किशोर आचार्य की पुस्तक की गंभीर समीक्षा की है। इन पुस्तकों या पुस्तक का संपूर्ण परिचय भी समीक्षा स्तम्भ में आवश्यक है पाद टिप्पणी में।

- **शत्रुघ्न प्रसाद, राजेन्द्रनगर, पथ-13ए, पटना।**

‘चिन्तन-सृजन’ के जनवरी-मार्च 08 के अंक में आपने मेरे आलेख ‘दमण का आँखों देखा स्वाधीनता-संग्राम’ को स्थान दिया, तदर्थ अत्यंत आभारी हूँ।

इस लेख का प्रकाशन इसलिए भी आवश्यक था कि यह उन सेनानियों के साक्षात्कार पर आधारित है, जिन्होंने प्रत्यक्षतः या परोक्षतः उस संग्राम में भाग लिया या उसके प्रत्यक्षदर्शी रहे। यह दस्तावेज पहली बार प्रकाशित हुआ है।

‘चिन्तन-सृजन’ बहुत अच्छा चल रहा है। समसामयिक विडम्बनाओं पर आपकी सतेज टिप्पणियाँ बहुत ही उद्वेलक होती हैं। यह घंटानाद बहुत ही आवश्यक है, ताकि ‘होइहें सोइ जो राम रचि राखा’ की अकर्मण्यतापूर्ण स्थितियों में सजग-सुकरता बनी रहे।

डॉ. लोकेशचन्द्र जी के गहन चिंतनपूर्ण एवं पाण्डित्य-प्रखर आलेख आप नियमित रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। यह क्रम बना रहे। हिन्दी को ऐसे आलेखों की बहुत आवश्यकता है। इसी अंक में आपने मेरा पत्र प्रकाशित किया है। उसमें प्रुफ की दो भूलें रह गयी हैं ‘हर अंक अपने आप में सबल और शबाल है, जबकि ‘शबल’ होना चाहिए, इसी प्रकार ‘यह जोत जलती रहे’ होना चाहिए था। यदि यह मेरी खराब लिखावट के कारण हुआ हो, तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

- **मदनमोहन तरुण, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भारतीय भाषा संकाय, एल बी एस नेशनल एकेडेमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी; नेशनल डिफेंस अकादमी, खड़कवासला, पुणे।**

चिन्तन-सृजन’ के नए अंक (जनवरी-मार्च 2008) में आपका सम्पादकीय लेख (सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य) पढ़ा। पूर्वोत्तर भारत में पल रहे अलगाववाद के संदर्भ में आपकी चिंता से रु-ब-रु हुआ। चिन्तन-सृजन ने इन मुद्दों पर सार्थक बहस शुरू कर एक प्रशंसनीय पहल की है।

- **अभिषेक अवतंस, प्रवक्ता (अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान) अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा- 282005।**

ऋग्वेद की भाषा और कविता समृद्ध एवं सम्पूर्ण है, एतद् आधार पर अबतक में विद्वानों द्वारा किये गए उसकी रचना के काल-निर्धारण से कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ था। श्री महेश दुबे द्वारा प्रस्तुत श्री कृपाशंकर सिंह की स्थापना, कि ऋग्वेदीय संस्कृति हड़प्पा सभ्यता (3000 ई. पू.) से कम से कम डेढ़ सहस्र अर्थात् आज से साढ़े छह हजार वर्ष पहले अस्तित्व में थीतर्कसंगत एवं प्रामाणिक लगती है। अधिक जानकारी के लिए श्री विजय कुमार एवं शंकर शरण का लेख नक्सलवाद: मिथक और यथार्थ तथा सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य भी पढ़ा।

‘चिन्तन-सृजन’ का अंक जनवरी-मार्च, 2008 मुझे यथा समय मिल गया था। आभारी हूँ।

- **केशिकान्त, क्यू-25, पंजाबी विश्वविद्यालय परिसर, पटियाला-147002।**

मुझे आपकी त्रैमासिक पत्रिका पढ़ने का कई मौका मिला। मैं इसके लेखों से काफी प्रभावित हुआ हूँ।

- **कामराज सिन्धु, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, दूरवर्ती शिक्षा निदेशालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136119 भारत।**

आपकी सम्पादन-प्रज्ञा से प्रतिभासित त्रैमासिक ‘चिन्तन-सृजन’ का जनवरी-मार्च, 2008 का अंक प्राप्तकर विशिष्ट सारस्वत उपलब्धि का बोध हुआ। आपने अपने सम्पादकीय में भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति की जिस भयावहता का चित्रण किया है, उसमें आपकी, एक युगप्रहरी की, पत्रकारोचित, भूमिका स्पष्ट है। साहित्यिक पत्रकारिता में ऐसी सम्पादकीय भूमिका विरल होती है। ऐसा तल्लु सम्पादकीय अग्रलेख ‘प्रताप’ के प्रतापी सम्पादक पं. गणेशशंकर विद्यार्थी लिखा करते थे। काश, शासन आपके तथ्यपरक वक्तव्य पर विचार करता।

शेष आलेख अपने विषय के विशेषज्ञ लेखकों द्वारा शोधगर्भ दृष्टि से लिखे गये हैं, जिनमें उनके चिन्तन की प्रत्यग्रता और नई दिशा-दृष्टि संकेतित है। ‘नक्सलवादः मिथक और यथार्थ’, शीर्षक आलेख देश की उग्रवाद-प्रभावित स्थिति को समझने में विश्वसनीय भूमिका प्रस्तुत करता है। पुष्पपाल सिंहजी का आलेख भाषाशास्त्रीय चिन्तन की दृष्टि से अनेक नये आयाम प्रस्तुत करता है। किन्तु, इनके आलेख के शीर्षक और आलेखगत विषय के विश्लेषण में वदतोव्याघात जैसी स्थिति प्रतीत होती है। विभाषाएँ ही तो हिन्दी भाषा की प्राणशक्ति होती हैं। महिला-सशक्तीकरण के माहौल में डॉ. हरीश सेठी की आलेखगत वैचारिकी का सामयिक महत्त्व है। कुल मिलाकर, ‘चिन्तन-सृजन’ में, जहाँ से जो भी अच्छा मिल जाता है, उसे आदर के साथ ग्रहण करने की असाधारण रुचि पाई जाती है।

-**डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पूर्व-व्याख्याता: प्राकृत, प्राकृत-शोध-संस्थान, वैशाली; पूर्व-उपनिदेशक (शोध) एवं सम्पादक: ‘परिषद्-पत्रिका’, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना।**

‘चिन्तन-सृजन’ अक्टूबर-दिसम्बर 2007 अंक अपने मित्र से प्राप्त हुआ। पत्रिका की समग्र सामग्री आज के संदर्भ में सार्थक हस्तक्षेप करती है साथ ही अपने बेबाक टिप्पणी एवं विचारों से सार्थक चेतना को जागृत करती है। इस पत्रिका के द्वारा आप द्वारा किया गया यह रचनात्मक कार्य बहुत ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

- **राजेन्द्र सिंह, ग्रा.+पो. बरुइन (पानी टंकी के पास), जिला गाजीपुर-232331।**

यह जानकर बड़ी खुसी हुई कि आपके द्वारा सम्पादित तथा संचालित ‘चिन्तन-सृजन’ पत्रिका का बहुत सुचारू रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। इस प्रकल्प में कृपया आप हमारी ओर से हार्दिक बधाई एवं अनेकानेक शुभकामनाएँ सहर्ष स्वीकारें।

- **पण्डित बी. एन. मुद्गिल, प्रधान सम्पादक एवं प्रबन्ध निदेशक व वरिष्ठ नागरिक, समाचार संघ, प्रेस सदन, गट्टी-खेड़ी(रोहतक), हरियाणा।**

पृष्ठ 126 का शेष

प्रगति वार्ता, शैक्षणिक चिन्तन एवं संवाद की पत्रिका; वर्ष-4, अंक-2, 3, 4, फरवरी, मार्च, अप्रैल-2008, संपादक : सच्चिदानन्द, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी-रामजन्म मिश्र द्वारा एवं प्रगति भवन, चैती दुर्गा स्थान, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद रोड, साहिबगंज, झारखण्ड-816109 से प्रकाशित। पृष्ठ : 44, मूल्य : 20 रुपए।

व्यंग्य यात्रा, सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी; वर्ष : 3 अंक : 14, जनवरी-मार्च 2008, संपादक : प्रेम जनमेजय, स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. प्रेम प्रकाश की ओर से सचेदवा प्रिंट आर्ट्स प्राईवेट लिमिटेड, 44, राजस्थानी उद्योगनगर, जी.टी. करनाल रोड, दिल्ली-110033 द्वारा मुद्रित एवं 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 से प्रकाशित, पृष्ठ: 96, मूल्य 20 रुपए।

राष्ट्रभाषा सन्देश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का पाक्षिक मुखपत्र, भाग 28, 30 मार्च 2008, चैत्र 10, शक 1929, अंक 13,14; प्रधान संपादक : विभूति मिश्र, प्रकाशक तथा मुद्रक : विभूति मिश्र, सम्मेलन मुद्रणालय (प्रयाग), इलाहाबाद-211003, पृष्ठ: 12, मूल्य: 1.50 रुपए।

History Now R.A.; Vol-10, 2nd Year, Feb. '08 Editor: Ashoke Dasgupta, 26 Bidhan Sarani, Kolkata-6. Res.: 59/B Kankulia Road, Kolkata-29. Page: 48, Price: Rs 20/-

LOK KALYAN SAMITI Jan – March 2008 News Printed & Published by: Lok Kalyan Samiti, Sucheta Bhawan, 11-A, Vishnu Digamber Marg, (Rouse Avenue), New Delhi-110002. Page: 12.

izkfTr&Ihdkj

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नयी पुस्तकें/पत्रिकाएँ :

पुस्तकें :

घर बचाओ देश बचाओ, लेखक: अक्षय जैन, प्रकाशक : 'दाल-रोटी', 13, रश्मन अपार्टमेंट, उपासनी हॉस्पिटल के ऊपर, एस. एल. रोड. मुलुंड (प.) मुंबई-400080, वर्ष 2007 : तीसरा संस्करण पृष्ठ: 16, मूल्य 10 रुपए।

ताकि, जागें लोग दसवाँ राज्य सम्मेलन 2008 के अवसर पर म. प्र. प्रगतिशील लेखन संघ, मन्दसौर द्वारा प्रकाशित, संपादक : चन्द्रकान्त द्विवेदी, प्रथम संस्करण: 2008, पृष्ठ: 72, मूल्य: 20 रुपए।

कपास के फूल सभ्यता की तितली, लेखक : गोविन्द कुमार 'गुंजन', प्रकाशक: पश्चिमांचल प्रकाशन, 26, मनसुखनगर सोसायटी, निकट भवसार होस्टेल, नया वाड़ज, अहमदाबाद-380013, प्रथम आवृत्ति-2002, पृष्ठ : 168, मूल्य: 125 रुपए।

औरत, कहानी संग्रह, लेखिका : सावित्री देवी चौरसिया, प्रकाशक : हर्ष कुमार तिवारी, पाथेय प्रकाशन, 112, सराफा वार्ड, जबलपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ: 120, मूल्य: 100 रुपए।

तेलुगु की तीस प्रतिनिधि कहानियाँ, लेखक एवं अनुवाद : डॉ. विजयराघव रेड्डी, प्रकाशक : ग्रंथसदन 27/109ए/3, (भूतल) शंकर गली के सामने मेन पांडव रोड, ज्वाला नगर, शाहदरा, दिल्ली-110 032, प्रथम संस्करण: 2004, पृष्ठ : 256, मूल्य : 250/- रुपए।

पत्रिकाएँ :

कोंगु निधि कोयंबतूर क्षेत्र की राजभाषा गृह पत्रिका, वर्ष-2 अंक-2, मार्च, 2008, प्रधान संपादक : डॉ. सी. जयशंकर बाबु, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, क्षेत्रीय कार्यालय; डॉ. बालसुंदरम रोड, कोयंबतूर (तमिलनाडु)-641018. पृष्ठ: 56।

शेष पृष्ठ 125 पर

With Best Compliments
from
VASUNDHARA IMPEX (P) LTD.

Administrative Office
LG-69, World Trade Centre,
Babar Lane, New Delhi-110001

Regd. Office
1/3575, Netaji Subhash Marg, Darya Ganj,
New Delhi-110002 Phone Off. 3277883, 3711848

*We Strive
to Satisfy
Our Customers*

VASUNDHARA MARKETING CO.

Sales Tax No. LC/13/017261/1080

☎ 3277883 (Off.)

Regd. Office

**1/ 3575, Netaji Subhash Marg
Darya Ganj, New Delhi- 110002**